प्रथम संस्करण
वीर नि० स० २५०२

मूल्य :
[illegible]

©

मुद्रक :
सुभाषचन्द जैन
नवरग प्रिन्टर्स, मदनग

प्राक्कथन

गौतम गणधर ने भगवान महावीर से पूछा था—भगवन् ! आपने यह कहा था कि सम्पूर्ण विश्व में व्रत सार रूप हैं। उन व्रतो मे भी सार रूप क्या है ?

भगवान ने कहा—'सो सारो एस गोदम, सार झाणेत्ति णामेण, सव्वबुद्ध हि देसिद" हे गौतम ! व्रतो का सार ध्यान है। यह बात सम्पूर्ण अन्य सर्वबुद्धो (सर्वज्ञानियो) ने भी कही है।

उपर्युक्त प्रश्नोत्तर से ध्यान या चिन्तन का महत्त्व प्रकट होता है। वस्तुत कल्याण का मार्ग आत्मचिन्तन और सयम के परिपालन मे ही निहित है। सभी ऋषि महर्षि इस विषय मे एक मत हैं कि—आत्मचिन्तन विना मोक्ष नही।

अग्रेजी मे एक कहावत है कि As you think, so you become. आप जैसा सोचते हैं वैसे ही बन जाते हैं। बात सोलहो आने सही है—वस्तुत हमारा व्यक्तित्व हमारे चिन्तन का ही तो परिणाम है। हमारा जीवन हमारी विचारधारा का ही प्रतिफल है। हम अच्छा सोचेंगे, तो अच्छे बनेंगे और बुरा सोचेंगे तो बुरे। हमारे जीवन का नियामक हमारा चिन्तन ही है। 'चिन्तन' ही हमारी प्रवृत्तियो को निश्चित करता है—देह और ससार का निरन्तर चिन्तन व्यक्ति को देहवादी या सासारिक ही बनाएगा जबकि आत्म चिन्तन उससे भिन्न आज सम्पूर्ण विश्व विषमताओ से व्याकुल है निश्चय ही यह विकृत चिन्तन का परिणाम है।

भौतिक चिन्तन मे रत प्राणी कभी सच्चे सुख की प्रतीति नही कर सकता क्योकि वहाँ सुख ही नही है। यदि भौतिक पदार्थों मे सुख होता–सच्चा सुख होता तो आज के प्रगतिशील भौतिकवादी राष्ट्र क्यो दुखी रहते ? सच्चा सुख आत्मिक सुख है और उसे पाने के लिए सम्यक् चिन्तन की अपेक्षा होती है। सम्यक् चिन्तन के लिए ससार से पलायन करने की भी आवश्यकता नही, आवश्यकता सिर्फ इस बात की है कि हम ससार मे तो रहे किन्तु ससार हममे न रहे। एक उर्दू शायर ने यह बात कितने सरल शब्दो मे कही है—

"दुनिया मे रहता हूँ, दुनिया का तलबगार नही,
बाजार से गुजरा हूँ, मगर खरीदार नही।"

वस्तुत सम्यक् चिन्तन यही है, ससार मे रहते हुए भी हमारी दृष्टि आत्मविमुख नही होनी चाहिए, आत्मा की ओर हमारा लक्ष्य रहेगा तो हमारे विचार और व्यवहार सबमे अभूतपूर्व परिवर्तन आ जाएगा।

'आत्मचिन्तन' मे रुचि जागृत करने हेतु विद्वान् रचनाकारो ने अनेकानेक रचनाएँ की है जिनमे से कतिपय प्रस्तुत सकलन मे सकलित हैं। मानसिक निर्मलता के लिए द्वादश अनुप्रेक्षाओ का चिन्तन बहुमूल्य है। विद्वान एव अनुभवी सम्पादक ने रुचिशील जिज्ञासुओ के लिए आत्मचिन्तन की पुष्कल सामग्री प्रस्तुत सकलन मे जुटाई है जो अतीव उपयोगी है।

श्रद्धेय पण्डित श्री महेन्द्रकुमारजी अजमेरा पचेवर मे २० वर्षों से रह रहे हैं। 'सादा जीवन उच्च विचार' आपका लक्ष्य

है। आप मात्र कहने मे नही करने मे विश्वास करने वाले ठोस विद्वान् हैं। जिनवाणी के स्वाध्यायशील अध्येता है। वैद्यके रूप मे भी अपने क्षेत्र मे आपकी दूर दूर तक ख्याति है। शारीरिक रोगो को दूर करने मे ही आप निपुण नही है अपितु प्रस्तुत सकलन इस वात का प्रतीक है कि आत्मा के साथ जुडी हुई विकृतियो को दूर कर स्वास्थ्य सुख का मार्ग दर्शाने मे भी आपकी रुचि है।

मैं पण्डितजी के दीर्घायुष्य की कामना करता हूँ। साथ ही, प्रस्तुत सकलन जिज्ञासु जन मे 'आत्मचिन्तन' की प्रवृत्ति जागृत कर सके यही भावना भाता हूँ। इस उत्तम प्रकाशन के लिए प्रकाशक महोदय भी बधाई के पात्र है। इत्यलम्

चेतनप्रकाश पाटनी
६७६, सरदारपुरा, जोधपुर प्राध्यापक जोधपुर वि० वि०

प्रकाशकीय

वर्तमान भौतिक युग मे मानव, ससार मे इतना उलझ रहा है कि उसे इस बात की कोई सुधि ही नही कि उसके जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य क्या है ? वह यह भी ध्यान नही रख पाता कि उसकी आयु के कितने अमूल्य क्षण व्यर्थ ही निकल गए और अब कितने शेष रह गए हैं अत. चरम विकास के इच्छुक प्रत्येक मानव को प्रतिदिन इतना चिन्तन तो अवश्य ही करना चाहिए कि मैं कौन हूँ ? मेरा स्वभाव क्या है ? मेरा कर्तव्य क्या है ? प० आशाधरजी ने सागार धर्मामृत मे कहा है—

"ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय, वृत्त पच नमस्कृति ।
कोऽह को मम धर्म , किं व्रत चेति परामृशेत ।।"

ब्राह्म मुहूर्त मे उठकर पच नमस्कार मंत्र पढने के अनन्तर मैं कौन हू ? मेरा धर्म क्या है ? और व्रत क्या है ? इस प्रकार चिन्तन करे। अभीष्ट की सिद्धि के लिए विचार शक्ति अमोघ साधन है। "यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी"। मनुष्य की भावना ही उसकी उन्नति अवनति का कारण है। तत्त्वार्थ सूत्र मे कहा है—

"शुभ पुण्यस्याशुभः पापस्य" अर्थात् शुभ योग पुण्यास्रव और अशुभ योग पापास्रव का कारण है अतः शुभ भावनाओ का उपासक होना चाहिए ताकि आत्मा वैभाविक परिणति से मुक्ति पाकर स्वानुभूति की ओर आकृष्ट हो।

एतदर्थ परमात्मा की भक्ति, जिनवाणी का पठन पाठन व मनन, तत्वज्ञानियो की सगति, समय पर शुद्ध एव निर्दोष आहार पान तथा नीति सम्मत व्यवहार करना चाहिए।

प्राकृत एव सस्कृत भाषाओ से अनभिज्ञ होने के कारण मैंने पूज्य भाई सा० से अनुरोध किया कि आत्म चिन्तन मे रुचि जागृत करने वाली हिन्दी भाषा की ललित रचनाओ का एक सुन्दर सकलन प्रकाश में लाया जाए। मुझे प्रसन्नता है कि मेरे अनुरोध को मानकर उन्होने अत्यल्प समय मे अनेकानेक उपयोगी रचनाओ के साथ सामायिक पाठो तथा बारह भावनाओ का सुन्दर संकलन किया है जिसे पाठको के हाथो मे सौंपते हुए मुझे अत्यन्त सतोष की अनुभूति हो रही है। सकलन की सभी रचनाएँ ससार के स्वरूप का दिग्दर्शन कराकर आत्म विकास के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती हैं।

मैं आशा करता हूँ कि जिज्ञासु पाठक पाठिकाएँ अपनी व्यस्त दिनचर्या मे से कुछ समय निकाल कर सकलित रचनाओ का मनन व स्वाध्याय करके अवश्य लाभ उठावेंगे।

श्री चेतनप्रकाशजी पाटनी प्राध्यापक, हिन्दी विभाग जोधपुर विश्व विद्यालय, जोधपुर ने प्राक्कथन लिख कर आत्म-चिन्तन की महत्ता पर प्रकाश डाला है इसके लिए हम उनका हृदय से आभार मानते हैं।

श्री सुभाषचन्द जैन प्रो० नवरग प्रिन्टर्स को भी हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं जिनके सत्प्रयत्नो से पुस्तक सुन्दर रूप मे प्रस्तुत की जा रही है।

महेन्द्र भवन
मदनगज—किशनगढ

लादूराम अजमेरा
प्रधानाध्यापक के डी जैन प्राथमिक शाला

निवेदन

"सुख के पीछे भटक रहा है, सारा जग होकर सभ्रान्त।
पर न समझता सुख क्या कैसे कहाँ मिले है बन अभ्रान्त।।
इससे दौड धूप सब उसकी मृग तृष्णा सम जाती व्यर्थ।
आकुलता पल्ले पडती है, सध नहि पाता कोई अर्थ।।"

ससार का प्रत्येक प्राणी सुखाभिलाषी है और दुख से कोसो दूर रहना चाहता है, इसके लिए वह पूर्ण प्रयत्न भी करता है फिर भी दु खी देखा जाता है। ऐसा क्यो ? कारण स्पष्ट है कि उसने सच्चे सुख को समझने मे भूल की है। मोह के उदय से उसे पचेन्द्रिय के विषय भोगो की इच्छा होती है, उनकी कुछ अशो मे पूर्ति हो जाने को ही वह सुख मान बैठता है, जब कि वह सच्चा सुख नही, सुखाभास मात्र है, साथ ही पराधीन और क्षणजीवी भी। यह प्राणी अनादिकाल से मोह रूपी तेज मदिरा को पीकर आत्म-स्वरूप को भूल रहा है। इस आत्म विस्मृति के कारण ही वह पर पदार्थो मे राग करता है और सुख प्राप्ति हेतु बाहर ही भटकता फिरता है क्योकि उसकी मान्यता बन गई है कि उसे सुख बाहर से ही प्राप्त हो जाएगा किन्तु यह उसका सरासर भ्रम है।

सच्चा सुख तो आत्मीय है, वह आत्मा मे ही अन्तर्निहित है—"आत्म द्रव्य से भिन्न जगत मे नही कही सुख का लवलेश" अत मिथ्या मान्यता का त्याग कर स्व-पर स्वरूप को समझना चाहिए।

सच्चे सुख की कुंजी आत्मज्ञान है और इसे प्राप्त करने का साधन आत्म चिन्तन है। अत हमे इस ओर प्रवृत्त होने की आवश्यकता है। श्री द्यानतरायजी लिखते हैं—

"निज घट मे परमातमा, चिन्मूरत भैय्या।
ताहि विलोकि सुदृष्टि धर, पंडित परखैय्या॥"

अध्यात्म के अनुभव का अभ्यास प्रतिदिन आत्मध्यान अर्थात् सामायिक व बारह भावना आदि का चिन्तन करने से वृद्धिगत होता है और ऐसा करने वाला प्राणी अनुपम शांति अनुभव करता है। मनुष्य पर्याय महान् पुण्योदय से प्राप्त होने वाली दुर्लभ पर्याय है इसकी सार्थकता आत्म कल्याण मे प्रवृत्त होने मे ही है, अत —

"यावन्न ग्रस्यते रोगै, यावन्नाभ्येति ते जरा।
यावन्न क्षीयते चायुस्तावत् कल्याण माचर॥"

(अर्थात् जब तक रोगो ने नही घेरा है, बुढापा नही आया है और आयु क्षीण नही हुई है तब तक कल्याण कर लेना चाहिए। यह क्षण तेरा है, इसके बाद का क्षण भविष्य के गर्भ मे है अतः जिस किसी शुभ कार्य को करने का संकल्प किया है उसे यथा शीघ्र पूरा कर डालना चाहिए, प्रमाद अच्छा नही।)

प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी भाषाओ मे आत्मचिन्तन की प्रेरणा देने वाले अनेकानेक पाठ हैं, उनमे से कतिपय इस संकलन मे संग्रहीत हैं। संस्कृत, प्राकृत के पाठो का भी हिन्दी अनुवाद साथ मे दिया गया है ताकि उन भाषाओ से अनभिज्ञ पाठक भी

लाभ उठा सके। सग्रह या चयन करते समय इस बात की ओर लक्ष्य रहा है कि पाठ सरल हो, समझ मे आने वाले हो और दो चार बार पढने के बाद स्मृति मे भी जम सके। इस चयन दृष्टि के कारण कुछ कम प्रचलित और असुलभ पाठ भी सकलित हुए हैं परन्तु उन्हे आत्मसात् करने मे अधिक आयास की अपेक्षा नही होगी–ऐसा मेरा विश्वास है। सामायिक पाठ तथा बारह भावनाओ के अतिरिक्त कल्याण आलोचना, ध्यान के भेद व स्वरूप, जाप्य-मत्र तथा सल्लेखना आदि विषय भी सकलित हुए है जो विषय से सम्बन्धित होने के कारण अतीव उपयोगी है। इसके अलावा भी आत्म चिन्तन मे दृढता लाने मे उपयोगी कतिपय फुटकर पदो, सुभाषितो और सूक्तियो का सकलन किया गया है।

तत्त्व प्रेमी जिज्ञासु सज्जन इस सकलन का अधिकाधिक उपयोग कर ससार एव आत्मा के स्वरूप को प्राप्त करें, इसी भावना के साथ यह पुस्तक उन्हें समर्पित करता हूँ।

सकलन को अधिकाधिक उपयोगी बनाने हेतु प्राप्त हुए पाठको के सुझावो का सहर्ष स्वागत करू गा। इस सकलन मे जिन विद्वानो की रचनाओ का सग्रह है, मैं उन सभी का अत्यन्त आभारी हूँ।

सुन्दर मुद्रण के लिए मैं श्री सुभाषचन्द जैन प्रो० नवरग प्रिन्टर्स को भी हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

पो० पचेवर
वाया–डिग्गी (राजस्थान)

महेन्द्रकुमार अजमेरा
सम्पादक

विषय-सूची

अध्यात्म चिन्तन

सामायिक

लक्षण:-नियत काल तक पाप सब, त्यागे मन वच काय ।

आत्मलीन सम भाव युत, सामायिक व्रत थाय ॥

भावार्थ—काल की मर्यादा रूप मन, वचन, काय से हिसा, झूठ, चोरी, कुशील व परिग्रह इन पाचो पापो को छोड कर समता भाव रखते हुए अपने आत्मस्वरूप मे लीन रहना सामायिक है । योगसार मे कहा है -

यत्सर्व द्रव्य संदर्भे, रागद्वेष व्यपोहनम् ।

आत्म तत्व निविष्टस्य, तत्सामायिक मुच्यते ॥

भावार्थ—सर्व द्रव्यो मे रागद्वेष का अभाव तथा आत्म-स्वरूप मे लीनता सामायिक कही जाती है । सुख दुख, लाभ-अलाभ, इष्ट अनिष्ट आदि विषमताओ मे रागद्वेष न करना बल्कि साक्षी भाव से उनका ज्ञाता दृष्टा बने हुए समता स्वभावी आत्मा मे स्थित रहना अथवा सर्वसावद्ययोग से निवृत्ति ही सामायिक है ।

समता सर्व भूतेषु, संयमः शुभ भावना ।

आर्त रौद्र परित्यागस्तद्धि सामायिकं व्रतम् ॥

भावार्थ—सब प्राणियो पर समता भाव हो, सयम का पूरा पालन हो, शुभ भावनाएं बनी रहे, आर्त रौद्र दोनो ध्यानो का परित्याग हो वही सामायिक है ।

सामायिक क्यों करना चाहिए :-

इस जीव को अनादिकाल से कर्म व तद्निमित्तक शरीरादि पर पदार्थों का सयोग सम्बन्ध हो रहा है इसलिए इसने उन्ही पर पदार्थों को स्वात्मा मान लिया है और जब तक इसकी यह भूल न मिटेगी तब-तक सच्चे सुख की प्राप्ति नही हो सकती, किन्तु ज्यो ही यह स्व पर के स्वरूप को समझ कर सत्य श्रद्धा कर लेता है त्यो ही इसे स्व स्वरूप मे रुचि और पर स्वरूप मे उपेक्षा भाव हो जाता है। सामायिक करने से शरीर से ममत्व घटता है, धर्म मे रुचि बढती है। सामायिक निश्चय से मोक्ष प्राप्ति का एक मुख्य अग है। सामायिक के बिना अनादिकाल के लगे कर्म नष्ट नही हो सकते। सामायिक उत्कृष्ट चारित्र है। तीर्थंकर केवली तथा गणधर आदि मुनिराज इसी सामायिक द्वारा कर्म नाशकर मोक्ष पधारे हैं। सामायिक महान् पुण्य का साधन है श्रावक के जो नित्य के षट् कर्म हैं, उनमे सामायिक करना तप मे गर्भित है। इसलिए मुमुक्षुओ को नित्य प्रति दिवस मे तीन बार, दो बार या कम से कम एक बार तो अवश्य ही किसी शात और एकान्त स्थान मे बैठ कर अपने शुद्ध बुद्ध नित्यानन्द स्वरूप आत्मा का विचार करना चाहिए। श्री समन्तभद्राचार्य ने कहा है कि :-

सामायिकं प्रति दिवसं, यथा वदप्यनलसेन चेतव्यं।
व्रत पंचक परिपूरण, कारण मवधान युक्तेन ॥

भावार्थ—सामायिक पच महाव्रतो के परिपूर्ण करने का

कारण है इसलिए उसे प्रति दिन ही आलस्य रहित और एकाग्र चित्त से यथा नियम करना चाहिए।

सामायिक करने की विधि :-

सामायिक का उत्कृष्ट काल ६ घडी, मध्यम ४ घडी और जघन्य दो घडी है यदि ६ घडी सामायिक करना हो तो सूर्योदय से ३ घडी पहिले से ३ घडी बाद तक, यदि ४ घडी करना हो तो २ घडी पहिले से २ घडी बाद तक और यदि २ घडी करना हो तो १ घडी पहिले से १ घड़ी बाद तक ऐसे ही मध्याह्न व सायकाल मे करना चाहिए। सामायिक करने वाले को शुद्ध वस्त्र पहिन कर किसी एकान्त स्थान मे जहा डास मच्छर न हो, कोलाहल न हो, चित्त मे गडबडी डालने के कारण न हो, सर्दी, गर्मी व वर्षा की बाधा न हो, राग रग का स्थान न हो ऐसे स्थान मे जाकर किसी निर्जीव शिला व भूमि को नरम पीछी या वस्त्र से प्रमार्जन करके पूर्व या उत्तर मुख करके खड़े होना चाहिए और दोनो हाथ कमल की बौडी के आकार जोड कर मस्तक से लगा कर तीन बार शिरोनति करना (मस्तक झुका कर णमोस्तु करना) और ॐ नम सिद्धेभ्य, ॐ नम सिद्धेभ्य, ॐ नम सिद्धेभ्य इस मन्त्र को उच्चारण करना चाहिए, पश्चात् सीधे खडे होकर दोनो हाथ सीधे छोड देना चाहिए और दोनो पावों के अग्र भाग मे चार अगुल का अन्तर रहे। इस प्रकार मस्तक को भी सीधा और नासाग्र दृष्टि रखना चाहिए और ९ बार णमोकार मन्त्र का जाप करके अष्टाग नमस्कार करना चाहिए।

पश्चात् खडे होकर कालादि का परिमाण कर लेना चाहिए कि मैं ६ घडी, ४ घडी या २ घडी अथवा अपनी सुविधा व स्थिरता के अनुसार अमुक समय तक सामायिक करूगा, उतने काल मे जो परिग्रह शरीर पर है उतना ही ग्रहण है शेष सबका इतने काल मे त्याग है। इतने काल मे इस क्षैत्र के सिवाय जहा मैं खडा हूँ व बैठूगा, शेष क्षैत्र मे गमनागमन नंही करूगा। इतने समय तक अपने मन, वचन और काय को यथा सम्भव स्थिर रखने का प्रयत्न करूगा और सब मे समता भाव रखूगा। यथा शक्ति उपसर्ग व परीषह धैर्य पूर्वक सहन करूगा इत्यादि प्रतिज्ञा करना चाहिए पश्चात् उसी दिशा मे ९ या ३ बार णमोकार मन्त्र जप कर ३ आवर्त करना अर्थात् दोनो हाथो की अजुलि बना कर बाई ओर से दाहिनी ओर को ले जाते हुए ३ चक्कर करना और फिर मस्तक से लगा कर मस्तक झुकाना चाहिए। इस प्रकार एक दिशा मे ३ आवर्त और १ शिरोनति हुई, पश्चात् दाहिनी ओर पूर्व या दक्षिण दिशा मे फिर कर खडे होना चाहिए और उसी प्रकार ९ या ३ बार मन्त्र जप कर ३ आवर्त और १ शिरोनति करना चाहिए, पश्चात् दाहिनी ओर दक्षिण या पश्चिम दिशा मे फिर कर उसी प्रकार मन्त्रो का जाप ३ आवर्त और १ शिरोनति करना चाहिए। इस प्रकार चारो दिशाओ के सब मिलाकर ३६ या १२ मत्रो का जाप, १२ आवर्त और ४ शिरोनति हो जावेगी। पश्चात् जिस दिशा मे प्रथम खड़े होकर कायोत्सर्ग व नमस्कार क्रिया था उसी दिशा मे चाहे तो खड़े रह कर अथवा

पद्मासन या अर्द्धपद्मासन से स्थिर बैठ कर सामायिक पाठ सस्कृत या भाषा का इस प्रकार उच्चारण करे कि उसका भाव समझ मे आ जावे ताकि मन उसी के विचार मे लगा रहे।

सामायिक पाठ मे प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, सामायिक स्तवन, वदन और कायोत्सर्ग ये ६ कर्म हैं। (प्रथम प्रतिक्रमण मे अपने भूत काल सम्बन्धी दोषो का विचार करके उनकी निन्दा गर्हा व पश्चाताप करके उनको मिथ्या करने का प्रयत्न करना चाहिये)। (पश्चात् भविष्य काल मे ऐसे दोष नही लगाऊंगा इस प्रकार का विचार करे इसे प्रत्याख्यान कहते हैं इसके आदि या अन्त मे आलोचना पाठ भी बोलना चाहिये)। (फिर तृतीय सामायिक कर्म मे समस्त दोषो से शान्ति पाकर शत्रु मित्र, महल श्मसान, नगर वन, सुख दुख, हानि लाभ, सयोग वियोग मे से इष्टानिष्ट बुद्धि को हटा कर सर्व प्राणी मात्र मे समता भाव धारण करना चाहिए)। पश्चात् चौथे स्तवन कर्म मे चौबीसो तीर्थङ्कर भगवान् की नमस्कार पूर्वक स्तुति करे। पाचवे वदन कर्म मे किसी १ तीर्थंकर का विशेष गुणानुवाद करके वदना करना चाहिए। इससे सामायिक मे दृढता होती व स्वात्म रुचि बढती है। पश्चात् काय से ममत्व भाव को त्याग कर कुछ समय के लिए अपने शुद्धात्म स्वरूप का विचार करना चाहिए इसे कायोत्सर्ग कहते हैं ये सामायिक के ६ आवश्यक हैं। इस प्रकार से पाठ पूरा हो जाने पर या तो णमोकार मत्र के पूर्ण ३५ अक्षरो के मत्र से या अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्योनम. या अरहत सिद्ध, या

असिआउसा या अरहत या सिद्ध या ॐ इन मत्रो मे से किसी एक का अपनी सुविधानुसार १०८ बार जाप करे। १२ भावनाओ का सवेग व वैराग्य के अर्थ चिन्तवन करना चाहिए। पश्चात् खडे हो कर पूर्ववत् कायोत्सर्ग (९ बार णमोकार मत्र जप) करके उसी दिशा मे पुन· अष्टाग नमस्कार करे। प्रात काल की सामायिक पूर्ण हो चुकने पर श्रावक के १७ नियमो का भी विचार करके स्व शक्ति अनुसार नियम करना चाहिए। दूसरी प्रतिमा से ऊपर वाले श्रावको तथा मुनि आर्यिकाओ को नित्य नियम पूर्वक त्रिकाल सामायिकादि षट् आवश्यक करना ही चाहिए, किन्तु दूसरी व दूसरी से नीचे प्रथम प्रतिमा वाले व पाक्षिक श्रावको को त्रिकाल का नियम नही है, वे अपने अपने भावो की स्थिरता के अनुसार ३ बार, २ बार व १ बार भी कितने ही समय का परिमाण करके अभ्यास रूप से सामायिक कर सकते हैं। सामायिक के काल मे अपने मन वचन काय को चलायमान न होने दे, सामायिक की विधि और पाठ को चित्त की चचलता से भूल न जावे, अनादर से न करे अर्थात् प्रसन्न चित्त होकर बड़े उत्साह के साथ करना चाहिए। इस प्रकार नित्य सामायिक करने से बडी शान्ति मिलती है, अत प्रमाद छोड कर सामायिक अवश्य करना चाहिए।

णमोकार मन्त्र

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं ॥ १ ॥

अर्थ—अरिहंतो को नमस्कार हो, सिद्धो को नमस्कार हो, आचार्यो को नमस्कार हो, उपाध्यायो को नमस्कार हो और लोक मे सब साधुओ को नमस्कार हो ।

मंगलोत्तम शरण पाठ

चत्तारि मंगलं–अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं ।

चत्तारि लोगुत्तमा–अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलि पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो ।

चत्तारि सरणं पवज्जामि–अरिहंते सरणं पवज्जामि, सिद्धे सरणं पवज्जामि, साहू सरणं पवज्जामि, केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि ।

अर्थ—चार पदार्थ मगल स्वरूप हैं—अरहंत मगल है, सिद्ध मगल हैं, साधु मगल हैं और केवली द्वारा प्रज्ञप्त धर्म मंगल है । लोक मे चार पदार्थ सर्व श्रेष्ठ है—अरहत सर्व श्रेष्ठ है, सिद्ध सर्व श्रेष्ठ हैं, साधु सर्व श्रेष्ठ हैं और केवली द्वारा प्रज्ञप्त धर्म सर्व

श्रेष्ठ है। चार की शरण मे जाता हूँ—अरहतो की शरण मे जाता हूँ, सिद्धो की शरण मे जाता हूँ, साधुओ की शरण मे जाता हूँ और केवली द्वारा प्रज्ञप्त धर्म की शरण मे जाता हूँ।

सामायिक पाठ

(श्री पं० महाचन्दजी कृत)

१ प्रतिक्रमण कर्म

काल अनन्त भ्रम्यो जग मे सहिये दु ख भारी।
जन्म मरण नित किये पाप को है अधिकारी ।।
कोटि भवातर माहि मिलन दुर्लभ सामायिक।
धन्य आज मैं भयो योग मिलियो सुखदायक ।। १ ।।

हे सर्वज्ञ जिनेश किये जे पाप जु मै अब।
ते सब मन वच काय, योग की गुप्ति बिना लभ ।।
आप समीप हजूर माहि मैं खडो खड़ो सब।
दोष कहू सो सुनो करो नठ दु ख देहि जब ।। २ ।।

क्रोध मान मद लोभ मोह माया वश प्रानी।
दु.ख सहित जे किये दया तिनकी नहि आनी ।।
विना प्रयोजन एकेन्द्रिय विति चउ पचेन्द्रिय।
आप प्रसादहि मिटे दोष जो लग्यो मोहि जिय ।। ३ ।।

आपस मे इक ठोर थाप कर जे दु ख दीने।
पेलि दिये पग तले दाव कर प्राण हरी ने ।।

आप जगत के जीव जिते तिन सबके नायक।
अरज करू मैं सुनो दोष मेटो दुख दायक ॥ ४ ॥

अजन आदिक चोर महा घन घोर पाप मय।
तिनके जे अपराध भये ते क्षमा क्षमा किय ॥
मेरे जे अब दोष भये ते क्षमहु दयानिधि।
यह पडिकोणो कियो आदि षट कर्म माहि विधि ॥ ५ ॥

२ प्रत्याख्यान कर्म

जो प्रमाद वशि होय विराधे जीव घनेरे।
तिनको जो अपराध भयो मेरे अघ ढेरे ॥
सो सब झूठो होउ जगतपति के परसादे।
जा प्रसाद तें मिलै सर्व सुख दुख न लाधे ॥ ६ ॥

मैं पापी निर्लज्ज दया करि हीन महा शठ।
किये पाप अघ ढेर पाप मति होय चित्त दुठ ॥
निदू हू मैं बार बार निज जिय को गरहू।
सब विधि धर्म उपाय पाय फिर पापहि करहू ॥ ७ ॥

दुर्लभ है नर जन्म तथा श्रावक कुल भारी।
सत सगति सजोग धर्म जिन श्रद्धा धारी ॥
जिन वचनामृत धार समावर्तें जिनवानी।
तो हू जीव सघारे धिक धिक धिक हम जानी ॥ ८ ॥

इन्द्रिय लम्पट होय खोय निज ज्ञान जमा सब।
अज्ञानी जिमि करे तिसी विधि हिंसक ह्वै अब ॥

गमनागमन करतो जीव विराधे भोले ।
ते सब दोष किये निंदू अब, मन वच तोले ।। ६ ।।
आलोचन विधि थकी दोष लागे जु घनेरे ।
ते सब दोष विनाश होउ तुम ते जिन मेरे ।।
बार बार इस भांति मोह मद दोष कुटिलता ।
ईर्षादिक ते भये, निंदिये जे भय भीता ।। १० ।।

३ सामायिक भाव कर्म

सब जीवन मे मेरे समता भाव जग्यो है ।
सब जिय मो सम समता राखो भाव लग्यो है ।।
आर्त रौद्र द्वय ध्यान छांडि करिहू सामायिक ।
संजम मो कब शुद्ध होय यह भाव बधायक ।। ११ ।।
पृथ्वी जल अरु अग्नि वायु चउ काय वनस्पति ।
पचहि थावर माहि तथा त्रस जीव वसै जित ।।
वे इन्द्रिय तिय चउ पचेन्द्रिय माहि जीव सब ।
तिनते क्षमा कराऊ मुझ पर क्षमा करो अब ।। १२ ।।
इस अवसर मे मेरे सब सम कंचन अरु तृण ।
महल मसान समान शत्रु अरु मित्रहि सम गण ।।
जामन मरण समान जानि हम समता कीनी ।
सामायिक का काल जितै यह भाव नवीनी ।। १३ ।।
मेरो है इक आतम तामे ममत जु कीनो ।
और सबै मम भिन्न जानि समता रस भीनो ।।

मात पिता सुत बन्धु मित्र तिय आदि सर्व यह।
मोतैं न्यारे जानि जथारथ रूप कर्यो गह॥ १४॥

मैं अनादि जग जाल माहि फसि रूप न जाण्यो।
एकेन्द्रिय दे आदि जन्तु को प्राण हराण्यो॥
ते सब जीव समूह सुनो मेरी यह अरजी।
भव भव को अपराध छिमा कीज्यो कर मरजी॥ १५॥

४ स्तवन कर्म

नमो ऋषभ जिनदेव अजित जिन जीति कर्म को।
सम्भव भव दुख हरण करण अभिनन्द शर्म को॥
सुमति सुमति दातार तार भव सिंधु पार कर।
पद्मप्रभ पद्माभ भानि भव भीति प्रीति धर॥ १६॥

श्री सुपार्श्व कृत पाश नाश भव जास शुद्ध कर।
श्री चन्द्र प्रभ चन्द्र कान्ति समदेह कान्ति धर॥
पुष्पदन्त दमि दोष कोष भवि पोष रोष हर।
शीतल शीतल करण हरण भव ताप दोष कर॥ १७॥

श्रेय रूप जिन श्रेय ध्येय नित सेय भव्य जन।
वासुपूज्य शत पूज्य वासवादिक भव भय हन॥
विमल विमल मति देन अन्तगत है अनन्त जिन।
धर्म शर्म शिव करण शांति जिन शांति विधायिन॥ १८॥

कुंथु कुंथु मुख जीव पाल अरनाथ जाल हर।
मल्लि मल्ल सम मोह मल्ल मारन प्रचार धर॥

मुनिसुव्रत व्रत करण नमत सुर सघहिं नमि जिन।
नेमिनाथ जिन नेमिधर्म रथ माहि ज्ञान धन ॥ १९ ॥
पार्श्वनाथ जिन पार्श्व उपल सम मोक्ष रमापति।
वर्द्धमान जिन नमू वमू भव दुख कर्म कृत ॥
या विधि मैं जिन सघ रूप चउबीस सख्य धर।
स्तवू नमू हू बार बार बदू शिव सुखकर ॥ २० ॥

५ वन्दना-कर्म

वन्दू मैं जिनवीर धीर महावीर सु सनमति।
वर्द्धमान अतिवीर वदि हू मन वच तन कृत ॥
त्रिशला तनुज महेश धीश विद्यापति वन्दू।
वदौं नित प्रति कनक रूप तनु पाप निकन्दू ॥ २१ ॥
सिद्धारथ नृप नन्द दुन्द दुख दोष मिटावन।
दुरित दवानल ज्वलित ज्वाल जग जीव उधारन ॥
कुडलपुर करि जन्म जगत जिय आनन्द कारन।
वर्ष बहत्तर आयु पाय सब ही दुख टारन ॥ २२ ॥
सप्त हस्त तनु तुग भग कृत जन्म मरण भय।
बाल ब्रह्म मय ज्ञेय हेय आदेय ज्ञान मय ॥
दे उपदेश उधारि तारि भव सिंधु जीव घन।
आप बसे शिव माहि ताहि वदो मन वच तन ॥ २३ ॥
जाके वदन थकी दोष दुख दूरहि जावे।
जाके वदन थकी मुक्ति तिय सन्मुख आवे ॥

जाके वदन थकी वैद्य होवे सुरगन के।
ऐसे वीर जिनेश वदि हू क्रम युग तिनके ।। २४ ।।

सामायिक पट कर्म माहि वदन यह पचम।
वदो वीर जिनेन्द्र इन्द्र शत वद्य वद्य मम ।।
जन्म मरण भय हरो करो अघ शान्ति शान्ति मय।
मैं अघकोष सुपोष दोष को दोष विनाशय ।। २५ ।।

६ कायोत्सर्ग कर्म

कायोत्सर्ग विधान करू अन्तिम सुखदाई।
काय त्यजनमय होय काय सबको दुखदाई ।।
पूरब दक्षिण नमू दिशा पश्चिम उत्तर मे।
जिन गृह वन्दन करू हरू भव पाप तिमिर मे ।। २६ ।।

शिरोनती मैं करू नमू मस्तक कर धरिकै।
आवर्तादिक क्रिया करू मन वच मद हरिकै ।।
तीन लोक जिन भवन माही जिन हैं जु अकृत्रिम।
कृत्रिम है द्वय अर्द्ध द्वीप माहि वन्दो जिम ।। २७ ।।

आठ कोडि परि छप्पन लाखजु सहस सत्याणू न।
च्यारि शतक पर असी एक जिन मन्दिर जाणू ।।
व्यतर ज्योतिष माहि सख्य रहिते जिन मन्दिर।
ते सब वन्दन करू हरहु मम पाप सघ कर ।। २८ ।।

सामायिक सम नाहि और कोउ वैर मिटायक।
सामायिक सम नाहि और कोउ मैत्रीदायक ।।

श्रावक अणुव्रत आदि अन्त सप्तम गुण थानक ।
यह आवश्यक किये होय निश्चय दुख हानक ॥ २९ ॥
जे भवि आतम काज करण उद्यम के धारी ।
ते सब काज विहाय करो सामायिक सारी ॥
राग रोष मद मोह क्रोध लोभादिक जे सब ।
बुध महाचन्द्र विलाय जाय ताते कीज्यो अब ॥ ३० ॥

लघु सामायिक

श्लोक :-सिद्ध वस्तु वचो भक्त्या सिद्धान् प्रणमतां सदा ।
सिद्ध कार्याःशिवं प्राप्ताः सिद्धिं ददतु नोऽव्ययाम् ।१।

भावार्थ—हम भक्ति पूर्वक जिनागम और सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार करते है । वे कृतकृत्य, मोक्ष को प्राप्त, सिद्ध परमेष्ठी हमे अविनश्वर सिद्धि प्रदान करे ।

दोहा :-सकल निकल परमात्मा, आगम गुरु निर्ग्रन्थ ।
वन्दूं कारण मोक्ष के ज्यों पाऊं शिव पन्थ ॥ १ ॥

श्लोकः-नमोस्तु धूत पापेभ्यः सिद्धेभ्यः ऋषि संसदि ।
सामायिकम् प्रपद्येहं भव भ्रमण सूदनम् ॥ २ ॥

भावार्थ—समस्त कर्म कलक से रहित, श्री सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार करके, महर्षियो के रहने योग्य एकान्त और शान्त स्थान में स्थिर होकर मैं ससार भ्रमण को मिटाने वाली सामायिक प्रारम्भ करता हूँ ।

दोहा—द्रव्य भाव नोकर्म विन सिद्ध स्वरूप विचार ।
सामायिक प्रारम्भ करूं, भव भय नाशन हार ॥ २ ॥

श्लोक—साम्यं मे सर्व भूतेषु वैरं मम न केनचित् ।
आशां सर्वां परित्यज्य समाधिमहमाश्रये ॥ ३ ॥

भावार्थ—मेरे समस्त जीवो मे समता भाव रहे, किसी से कभी भी वैर भाव न हो, तथा मैं समस्त इच्छाओ व आशाओ का त्याग कर निरन्तर स्वात्मध्यान (समाधि) मे निमग्न रहूं ।

दोहा—समता सब प्राणिन विषैं वैर न कोई संग ।
आशा तृष्णा त्याग के रचूं सु आतम रंग ॥ ३ ॥

श्लोक—रागद्वेषान्ममत्वाद्वाहा मया ये विराधिताः ।
क्षमंतु जंतवस्ते मे तेभ्यः क्षमाम्यहं पुनः ॥ ४ ॥

भावार्थ—मैने रागद्वेप व मोह के वश होकर जिन २ जीवो का घात किया है वे सब जीव मुझ पर क्षमा करें, मैं भी सब जीवो पर क्षमा करता हूं ।

दोहा—रागद्वेप व मोह वश, जीव विराधे जेह ।
क्षमा भाव मम तिनविषैं ते पुनि क्षमा करेह ॥ ४ ॥

श्लोक—मनसा वपुषा वाचा कृत कारित सम्मतैः ।
रत्नत्रय भवान् दोषान् गर्हे निंदामि वर्जये ॥ ५ ॥

भावार्थ—मैंने जो मन वच काय व कृत कारित अनु-मोदना से रत्नत्रय मे दोष लगाये हैं इसके लिए मैं अपनी निन्दा व गर्हा करके उनका परित्याग करता हू ।

दोहा--कृत कारित अनुमोदना वा मन वच तन कोय ।
दोष लगे त्रय रत्न में, निन्दूं गर्हूं सोय ।। ५ ।।

श्लोक–तैरश्च्य मानवं दैवमुपसर्गं सहेधुना ।
कायाहार कषायादीन् सन्त्यजामि त्रिशुद्धितः ।।६।।

भावार्थ—मैं देव मनुष्यो व तिर्यंचो द्वारा होने वाले उपसर्ग व परीषह को शात भाव से सहने के लिए तत्पर हू और शुद्ध मन वचन काय से इतने (सामायिक के) काल तक शरीर से ममत्व छोड कर आहार व परिग्रह आदि कषायो का भी त्याग करता हू ।

दोहा--सहुँ परिषह उपसर्ग वा सुरनर पशु कृत आय ।
काय आहार कषाय को त्यागूं मन वच काय ।। ६ ।।

श्लोक–रागं द्वेषं भयं शोकं, प्रहर्षोत्सुक्यदीनताः ।
व्युत्सृजामि त्रिधा सर्वमरतिरति मेव च ।। ७ ।।

भावार्थ—मैं मन वचन काय से राग, द्वेष, भय, शोक, हर्ष, उत्साह, दीनता, रति, अरति आदि दोषो को आत्म घातक जान कर त्याग करता हू, व सदा के लिए त्यागने की भावना भी करता हू ।

रागद्वेष भय शोक रति, सामायिक के काल ।
हर्ष विषादिक सबहिं तजूं त्रियोग सम्हाल ॥ ७ ॥

श्लोक—जीविते मरणे लाभेऽलाभे योगे विपर्यये ।
बधावरौ सुखे दुःखे सर्वदा समता मम ॥ ८ ॥

भावार्थ—मेरे सामायिक के काल मे जीवन मरण, लाभ अलाभ, सयोग वियोग, शत्रु मित्र और सुख दु ख आदि मे हमेशा समता भाव रहे ।

दोहा—सुख दुख, जीवन मरण रिपु मित्र महल उद्यान ।
त्यागूं इष्ट अनिष्टता धारूं भाव समान ॥ ८ ॥

श्लोक—आत्मैव मे मदा ज्ञाने दर्शने चरणे तथा ।
प्रत्याख्याने ममात्मैव तथा संवर योगयोः ॥ ९ ॥

भावार्थ—सम्यक्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, सम्यक् त्याग तथा कर्मो के आस्रव को रोकने व ध्यानादि मे एक मेरा आत्मा ही शरण है ।

दोहा—सदृग ज्ञान चरित्र तप त्याग सु संवर ध्यान ।
शरण अनन्य ममात्मा, इनमें निश्चय जान ॥ ९ ॥

श्लोक—एको मे शाश्वतश्चात्मा, ज्ञान दर्शन लक्षणः ।
शेषा बहिर्भवा भावाः, सर्वे संयोग-लक्षणाः ॥ १० ॥

भावार्थ—ज्ञान दर्शन लक्षण वाला एक मेरा आत्मा ही नित्य है, शेष कर्म जनित रागादि भाव तथा शरीरादि बाह्य

पदार्थ सब मेरे स्वरूप से भिन्न सयोग लक्षण वाले है, उनमे मेरा कुछ भी नही है।

दोहा—शुद्धातम इक नित्य मम, ज्ञान दर्श सुख रूप।
बहिर्द्रव्य संयोग वा सब विभाव दुख रूप।। १० ।।

श्लोक—संयोग मूला जीवेन प्राप्ता दुःख परम्परा।
तस्मात्संयोग सम्बन्धं त्रिधा सर्वं त्यजाम्यहं ।।११।।

भावार्थ—वाह्य पदार्थो के सयोग से तथा उनमे ममत्व करने से मेरे आत्मा ने अनादिकाल से इस ससार मे जन्म मरणादि बहुत प्रकार के दु ख सहे हैं, इसलिए मैं अपने मन वचन काय से उन सब कर्मों व कर्म जन्य भावो आदि समस्त वाह्य सयोग सम्वन्ध रूप पदार्थो का त्याग करता हू।

दोहा—परम्परा जिय दुख सहे, बाह्य वस्तु संयोग।
सो संयोग सम्बन्ध को, तजूं सम्हार त्रियोग ।।११।।

श्लोक—एवं सामायिकात् सम्यक् सामायिक मखंडितम्।
वर्तते मुक्तिमानिन्या वशीभूताय ते नमः ।। १२ ।।

भावार्थ—इस प्रकार सामायिक पाठ मे कही हुई रीति के अनुसार अखडित सामायिक करने से जो महात्मा मुक्ति रमणी के वश हो गए है उनको पुन पुन. नमस्कार करता हूँ।

दोहा—जिन सामायिक आदरी "दीप" अखंडित रूप।
मुक्ति रमा के कंथ ते, नमों शुद्ध चिद्रूप ।। १२ ।।

आत्म कीर्तन

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता द्रष्टा आतम राम ।। टेक ।।
मैं वह हूँ जो है भगवान, जो मैं हूँ वह है भगवान ।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यह राग वितान ।। १ ।।

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।
किन्तु आश वश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ।। २ ।।

सुख दुख दाता कोई न आन, मोह राग रुप दुख की खान ।
निज को निज पर को पर जान, फिर दुख का नहिं लेश निदान ।३।

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिनके नाम ।
राग त्याग पहुचू निज धाम, आकुलता का फिर क्या काम ।। ४ ।।

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जग का करता क्या काम ।
दूर हटो पर कृत परिणाम, ज्ञायक भाव लखू अभिराम ।। ५ ।।

सामायिक पाठ

(श्री अमितगति आचार्य)

सत्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा परत्वम् ।
माध्यस्थ भावं विपरीत वृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव ।।१।।

भावार्थ—हे देव मेरे सदैव जीव मात्र मे मैत्री भाव, गुणी पुरुषो मे प्रमोद भाव, दीन दुखी जीवो मे करुणा भाव, विपरीत मार्गानुगामी जनो मे उपेक्षा भाव रहें ।

शरीरतः कर्तु मनन्त शक्तिं, विभिन्न मात्मान मपास्त दोषम्।
जिनेन्द्र कोषादिव खड्गयष्टि, तव प्रसादेन ममास्तु शक्तिः ॥२॥

भावार्थ—हे जिनेन्द्र जैसे म्यान से खड्ग पृथक हो जाता है उसी प्रकार मेरा आत्मा आपके प्रसाद से शरीर से भिन्न हो, ऐसी शक्ति प्रगट हो।

दुःखे सुखे वैरिणि बन्धु वर्गे, योगे वियोगे भवने वने वा।
निराकृता शेष ममत्व बुद्धेः, समं मनो मेस्तु सदापि नाथ ॥३॥

भावार्थ—हे नाथ दु.ख सुख, शत्रु मित्र, सयोग वियोग, महल व उद्यान आदि मे ममत्व वुद्धि हट कर मेरे सदैव समता भाव बना रहे।

मुनीश लीनाविव कीलिताविव, स्थिरौ निपाताविव बिम्बिताविव।
पादौ त्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा, तमोधुनानौ हृदि दीपकाविव ॥४

भावार्थ—हे मुनीश, दीपक के समान अधकार को नाश करने वाले तेरे चरण कमल हृदय मे इस प्रकार सदा के लिए लय हो जावे मानो कील दिये गये हो अथवा विम्ब के समान उकीरे गये हो।

एकेन्द्रियाद्या यदि देव देहिनः, प्रमादतः संचरता इतस्ततः।
क्षता विभिन्ना मिलिता निपीड़िता-स्तदस्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं तद
॥ ५ ॥

भावार्थ—हे देव, यदि मेरे द्वारा इधर उधर घूमने फिरने

वाले एकेन्द्री आदि जीवो की प्रमाद से विराधना हुई होवे, पीडित किये गये हो, मिलाये गये हो, पृथक किये गये हो तो सब दुष्कृत मिथ्या होवे ।

विमुक्ति मार्ग प्रतिकूल वर्तिना, मया कषायाक्ष वशेन दुर्धिया ।
चारित्र शुद्धे यदकारि लोपनं, तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृतं प्रभो ॥६॥

भावार्थ—हे प्रभो सन्मार्ग से विपरीत जो मैंने इन्द्रियो के विषय तथा कषाय के वश मे होकर शुद्ध चारित्र का लोप कर दिया है सो सब दुष्कृत मेरे मिथ्या होवें ।

विनिन्दना लोचन गर्हणैरहं मनोवचः काय कषाय निर्मितम् ।
निहन्मि पापं भव दुःख कारणं, भिषग्विषं मंत्र गुणैरिवाखिलम् ॥७॥

भावार्थ—मेरे मन वचन काय तथा कषायो के द्वारा जो ससार दु खो के कारण भूत पाप कर्मों का सचार हुआ है उसे मै अपनी निन्दा, आलोचना व गर्हा करके उसी प्रकार निर्मल करता हूँ जैसे सुयोग्य वैद्य मन्त्र या दवा से रोग व विष को दूर करता है ।

अतिक्रमं यद्विमते व्यतिक्रमं, जिनातिचारं सुचरित्र कर्मणः ।
व्यधामनाचार मपि प्रमादतः, प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये ॥८॥

भावार्थ— हे जिनेन्द्र, मैंने जो चारित्र मार्ग मे अतिक्रम व्यतिक्रम, अतिचार अनाचार प्रमाद के वश मे होकर किये हो सो प्रतिक्रमण करके शुद्ध करता हू ।

क्षतिं मनः शुद्धि विधेरतिक्रमं, व्यतिक्रमं शीलव्रतेर्विलंघनम् ।
प्रभोतिचारं विषयेषु वर्तनं, वदन्त्यनाचार मिहाति सक्तताम् ॥९॥

भावार्थ—मन के दुष्ट सकल्प विकल्पो को अतिक्रम, शील व्रतो का लाघना व्यतिक्रम, विषयो मे प्रवर्तना अतिचार और उनमे विलकुल ही आसक्त हो जाना अनाचार है ।

यदर्थ मात्रा पद वाक्यहीनं, मया प्रमादाद्यदि किंचनोक्तम् ।
तन्मेक्षमित्वा विदधातुदेवि, सरस्वती केवल बोध लब्धिम् ॥१०॥

भावार्थ— हे सरस्वती, हे जिनवाणी माता मुझसे प्रमाद वश यदि अर्थ, पद, मात्रा और वाक्यादि से कुछ हीनाधिक कहा गया हो तो सव अपराध क्षमा होवे ताकि मैं सर्वज्ञ पद को प्राप्त हो सकू ।

बोधिः समाधिः परिणामशुद्धिः, स्वात्मोपलब्धि शिवसौख्य सिद्धि
चिन्तामणिं चिन्तित वस्तुदाने, त्वां वंद्यमानस्य ममास्तु देवि ॥११॥

भावार्थ—हे सरस्वति देवि, तू चिन्तामणि के समान पदार्थ देने मे समर्थ है मैं तेरी वन्दना करता हूँ ताकि मुझे बोधि समाधि परिणामो की निर्मलता, स्वात्मा की प्राप्ति और मोक्ष सुख की सिद्धि होवे ।

यः स्मर्यते सर्व मुनीन्द्र वृन्दैः, यः स्तूयते सर्वनरामरेन्द्रैः ।
योगीयते वेद पुराण शास्त्रैः, सदेवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१२॥

भावार्थ—जो मुनीन्द्र वृन्दो से स्मरण किया जाता है तथा सर्व मनुष्य व देवो के स्वामी से पूजा जाता है, स्तुत्य है जो वेद पुराण व शास्त्रो मे वर्णित है, सो देवो का देव मेरे हृदय मे निवास करो।

यो दर्शनज्ञान सुख स्वभावः, समस्त संसार विकार बाह्यः।
समाधि गम्यः परमात्म संज्ञः, सदेवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१३॥

भावार्थ—जो अनन्त दर्शनज्ञान और सुख स्वरूप ससार के समस्त विकारो से रहित है, समाधि के द्वारा जानने योग्य है और परमात्मा पद का धारक है सो देवो का देव हमारे हृदय मे वास करो।

निषूदते यो भव दुःख जालं, निरीक्षते यो जगदन्तरालं।
योन्तर्गतो योगि निरीक्षणीयः सदेव देवो हृदये ममास्ताम् ॥१४॥

भावार्थ—जो ससार के जन्म मरणादि दु.खो का निर्मूल कर्ता हैं, जिसने समस्त जगत को जान लिया है और जो योगी जनो द्वारा समाधि से जाना जाता है सो देवो का देव मेरे हृदय मे वास करो।

विमुक्ति मार्ग प्रतिपादकोयो, यो जन्म मृत्यु व्यसनाद्यतीतः।
त्रिलोक लोकी विकलो कलंकः, सदेवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१५॥

भावार्थ— जो मोक्ष मार्ग का नेता, जन्म मरण आदि दुखो से रहित अलोक सहित तीनो लोको को जानने

अशरीर तथा कर्म कलक से रहित है सो देवो का देव मेरे हृदय में निरन्तर रहो।

क्रोड़ी कृता शेष शरीरि वर्गाः, रागादयो यस्य न संति दोषाः।
निरिन्द्रियो ज्ञानमयो न पायः, सदेवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१६॥

भावार्थ—जिन राग द्वेषादि भावो के कारण ससार के समस्त जीव कर्म से ग्रसे हुए दु खी हो रहे हैं, उनको जिसने सपूर्ण रूप से निर्मूल कर दिया है तथा जो प्रतीन्द्रिय केवलज्ञान स्वरूप है सो देवो का देव मेरे हृदय मे वास करो।

यो व्यापको विश्वजनीन वृत्ते:, सिद्धो विबुद्धो धुत कर्म बन्धः।
ध्यातो धुनीते सकलं विकारं, सदेवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१७॥

भावार्थ—जो समस्त जगत का कल्याण करने वाला, अपने स्वरूप मे रहता हुआ भी ज्ञान द्वारा समस्त लोकालोक मे व्यापक सिद्ध, बुद्ध और शुद्ध है सो देवो का देव हमारे हृदय मे वास करो।

न स्पृश्यते कर्म कलंक दोषैः, योध्वान्त संघैरिव तिग्मरश्मिः
निरंजनं नित्य मनेकमेकं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥१८॥

भावार्थ—जिसके कर्म कलक आदि दोष स्पर्श भी नही कर सकते जैसे सूर्य को अन्धकार स्पर्श नही कर सकता, जो निर्मल, नित्य, एक तथा अनेक स्वरूप है मैं उस आप्त देव की शरण को प्राप्त होता हूँ।

विभामते यत्र मरीचि माली, न विद्यमाने भुवनावभासि ।

स्वात्म स्थितं बोधमय प्रकाशं, तं देव माप्तं शरणं प्रपद्ये ॥१९॥

भावार्थ— सम्पूर्ण जगत को प्रकाशित करने वाले जिस आप्त सर्वज्ञ के होते हुए सूर्य तुच्छ प्रतिभासित होता है तथा जो ज्ञानमय प्रकाश से व्यापक होते हुए भी स्वात्मा मे ही स्थित है, मैं उस आप्त देव की शरण को प्राप्त होता हूँ ।

विलोक्य माने सति यत्र विश्वं, विलोक्यते स्पष्ट मिदं विविक्तम् ।

शुद्धं शिवं शान्त मनाद्यनन्तं, तं देव माप्तं शरणं प्रपद्ये ॥२०॥

भावार्थ जिसके ज्ञान मे समस्त जगत स्पष्ट और प्रत्यक्ष अपनी त्रिकालवर्ती अवस्थाओ सहित युगपत दिखाई देता है तथा जो शुद्ध शिव शान्त और अनादि अनन्त है, मैं उस देवाधि देव आप्त की शरण को प्राप्त होता हूँ ।

येनक्षता मन्मथ मान मूर्च्छा, विषाद निद्रा भय शोक चिन्ता ।

क्षयोनलेने व तरु प्रपचः, तं देव माप्तं शरणं प्रपद्ये ॥२१॥

भावार्थ—जिसने दावानल के समान अपनी ध्यानाग्नि से काम, मान, मूर्च्छा, विषाद, निद्रा, भय, शोक तथा चिन्ता आदि अन्तरग शत्रुओ को जला दिया है मैं उस आप्त देव की शरण को प्राप्त होता हूँ ।

न संस्तरोश्मा न तृणं न मेदिनी, विधानतो नो फलको विनिर्मितः

यतो निरस्ताक्ष कषायविद्विषः, सुधी भिरात्मैव सुनिर्मलोमतः

॥२२॥

भावार्थ—समाधि के लिए चटाई, भूमि, काष्ठादि की चौकी, पाषाण, शिला और तृणादि का आसन ही उपयोगी एव आवश्यक नही है, बल्कि रागद्वेषादिक कषाय और विषयो से रहित स्वात्मा को ही बुद्धिमानो ने समाधि के योग्य माना है ।

न संस्तरो भद्र समाधि साधनम्, न लोकपूजा न च संघमेलनम् ।
यतस्ततोऽध्यात्म रतोभवानिशं, विमुच्य सर्वामपि बाह्यवासनाम् ॥२३॥

भावार्थ—हे भद्र, समाधि के साधन न तो सस्तरादि होते हैं और न लोक की पूजा व किसी के सम्मेलन ही होते हैं इसलिए समस्त बाह्य वासनाओ का त्याग करके निरन्तर आत्म ध्यान मे ही मग्न रहो ।

न सन्ति बाह्या मम केचनार्था, भवामितेषां न कदा च नाहम् ।
इत्थं विनिश्चित्य विमुच्य बाह्यं, स्वस्थः सदा त्वं भवभद्रमुक्त्यै ॥२४॥

भावार्थ—ससार के कोई भी बाह्य पदार्थ मेरे नही है और न मै ही कदाचित उनका हूँ वे मुझसे और मै उनसे पर हूँ ऐसा विचार कर हे आत्मन् बाह्य वस्तुओ से मोह छोड़, स्वस्थ हो जिससे तू मुक्त हो सके ।

आत्मान मात्मन्य विलोक्यमानस्त्वं दर्शन ज्ञान मयो विशुद्धः ।
एकाग्रचित्तः खलु यत्र तत्र, स्थितोपि साधुर्लभते समाधिम् ॥२५॥

भावार्थ—हे आत्मन्, अपने आत्मा को अपने ही आत्मा

मे, देखने वाला तू दर्शनज्ञान स्वरूप और निर्मल है निश्चय से अपने चित्त को एकाग्र करके साधुजन जहा कही भी स्थित होकर समाधि को प्राप्त कर लेते हैं।

एकः सदा शाश्वतिको ममात्मा, विनिर्मलः साधिगमस्वभावः।
बहिर्भवा सन्त्यपरे समस्ता, न शाश्वताः कर्मभवाः स्वकीयाः॥२६॥

भावार्थ—मेरा आत्मा नित्य शुद्ध एक ज्ञान स्वभावी है, इसके सिवाय अन्य समस्त पदार्थ मेरे स्वरूप से भिन्न हैं और तो क्या ? स्वकीय कर्म ही नित्य नही है।

यस्यास्ति नैक्यं वपुषापि सार्द्धं, तस्यास्ति किं पुत्र कलत्र मित्रैः।
पृथक् कृते चर्मणि रोम कूपाः, कुतो हि तिष्ठन्ति शरीर मध्ये॥२७॥

भावार्थ—जबकि शरीर भी जो निरन्तर साथ रहता है अपना नही है तो शरीर से सम्बन्ध रखने वाले पुत्र स्त्री मित्रादि कैसे अपने हो सकते हैं। ठीक ही है यदि शरीर पर का चर्म उससे पृथक् कर दिया जाय तो रोम छिद्र भला कैसे ठहर सकते है नही ठहर सकते हैं।

संयोगतो दुःख मनेकभेदं, यतोश्नुते जन्म वने शरीरी।
ततस्त्रिधासौ परिवर्जनीयो, यियासुना निर्वृतिमात्मनीनाम्॥२८॥

भावार्थ—वाह्य पर वस्तुओ के सयोग होने से जीव ससार वन मे नाना प्रकार के दुःखो को प्राप्त होता है इसलिए यदि दुःखो

से छूट कर शीघ्र ही मोक्ष सुख प्राप्त करना चाहते हो तो मन वचन काय से समस्त पर वस्तुओ के सम्बन्ध का त्याग करो।

सर्वं निरा कृत्य विकल्प जालं, संसार कान्तार निपात हेतुम्।
विविक्तमात्मान मवेक्ष्यमाणो, निलीयसे त्वं परमात्म तत्त्वे ॥२९॥

भावार्थ—समस्त विकल्प जालो को जो ससार रूपी गहन वन मे भुलाने वाले हैं त्याग कर अपने शुद्धात्म स्वरूप का अनुभव करते हुए परमात्म स्वरूप मे निमग्न हो जाओ, लीन हो जाओ।

स्वयं कृतं कर्म यदात्मनापुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेण दत्त यदिलभ्यते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा ॥३०॥

भावार्थ—अपने पूर्वोपार्जित कर्म ही आपको शुभ कि वा अशुभ फल (सुख दुख) देते हैं अन्य कोई नही। यदि अन्य कोई भी आपको सुख द खादि देने लगे तो अपने किए कर्म सब निष्फल ही ठहरेंगे, परन्तु ऐसा नही होता, जो कर्म कर्ता है वह उनका फल भोक्ता भी है, यही सत्य है।

निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो, न कोपि कस्यापि ददाति किंचन्
विचार यन्नेव मनन्यमानसः, परो ददातीति विमुच्य शेमुषीम् ॥३१॥

भावार्थ—ससारी प्राणियो को उनके उपार्जित कर्मों के सिवाय अन्य कोई किसी को कुछ भी नही देता, ऐसा विचार

करके ही 'पर देता है' ऐसी बुद्धि को त्याग कर अपने ही शुद्ध स्वरूप मे रम जाना चाहिए ।

येः परमात्मा मितगति वन्द्यः, सर्व विविक्तोभृश मन वद्यः ।
शश्वदधीतो मनसि लभंते, मुक्ति निकेतन विभव वरं ते ॥३२॥

भावार्थ—अमितगति आचार्य से पूज्य जो निर्दोष सर्वज्ञ, अतिशयवान शुद्ध परमात्मा है, उसका जो अपने अत करण मे एकाग्रचित्त होकर ध्यान करेंगे, वे नित्य अतीन्द्रिय अनुपम स्वाधीन सुख को पावेंगे । अतएव उसी का ध्यान करना चाहिए ।

इति द्वात्रिंशता वृत्तैः परमात्मानमीक्षते ।
यो नन्यगत चेतस्को, यात्यसौ पदमव्ययम् ॥ ३३ ॥

भावार्थ—उक्त बत्तीस छन्दो के द्वारा जो परमात्मा को एकाग्रचित्त से ध्यान करता है वह शीघ्र ही परमात्म पद को पाता है ।

अध्यात्म सामायिक

卐 卐 卐

दोहा :-द्रव्य भाव नोकर्म विन, सिद्ध स्वरूप विचार ।
सामायिक प्रारम्भ करूं, भवभव नाशनहार ॥

शुद्ध निश्चय नय से मेरा आत्मा (शक्ति से) शुद्ध है, एक है, निजानन्द है, निष्कषायी, अपवेदी, अकर्त्ता, निकल (शरीर रहित), अचल, निर्लेप, वीतरागी, अविनाशी, अनुपम, अमेय, (टंकोत्कीर्ण), अक्षय, अमल, अजर, अरुज, अभय, अभव एकाकार, अनादि, अनन्त, अव्याबाध, अजेय, अतीन्द्रिय-सुखमय है।

मै नित्यानन्द, सहज शुद्ध चैतन्य स्वरूपी जीव द्रव्य हूं मै सदा निजानन्द स्वरूप मे लवलीन हूँ।

मै अखण्ड अद्वैत, स्वाभाविक चैतन्य विलास से अक्षय आनन्द का भोक्ता हूँ। शाश्वत सुख का स्वामी, सदा शिवस्वरूप आत्म भगवान् (भगवान् आत्मा) हू।

मै निश्चय से पर औपाधिक भावो से रहित सुखानन्द, ज्ञानानन्द, ज्योतिर्मयी, नित्य प्रकाशमान, निपुण, परम पुरुषोत्तम, भगवान् स्वरूप हू।

एक अनुपम अनन्य परिपूर्ण मेरा धाम है। मैं सदाकाल

मेरे आत्मा मे तृप्त हू। मै शुद्ध त्रिकाली, अखण्ड, चिदानन्द परमात्म-स्वरूप शक्ति से भगवान् स्वरूप हू। मै अनन्त सर्वज्ञ, वीतरागी, निराकार, निरजन, ज्ञाता, दृष्टा, चिन्मूर्ति, शुद्ध स्वरूपी, निर्मोही, निष्कप, निर्ममत्व, अरूपी, अमूर्तिक-आत्म द्रव्य हू।

मै न परका करता हू, न हर्त्ता हू, न भोक्ता हू, न रागी हू, न द्वेषी हू, सर्व पर भावो से भिन्न हू, द्रव्य कर्म से भिन्न हू, भाव कर्म से भिन्न हूँ, पर परणति से भिन्न हूँ, क्षणिक भाव से भिन्न हूँ, कर्मजन्य औपाधिक भावो से भिन्न हूँ, पच पापो से भिन्न हूँ और सर्व परद्रव्यो से भिन्न हूँ।

मै मेरे से अभिन्न हूँ, एकाकार हूँ, चिदानन्द रूप हूँ। मै आत्मानन्दी, सहजानन्दी, ज्ञानानन्दी, चिदानन्दी, निजानन्दी, परमानन्दी, जिनेश्वर, सिद्धेश्वर, बुद्धेश्वर, परमेश्वर, ब्रह्मा, विष्णु, शकर, शिव, गणपति, पुरुषोत्तम, परमानन्द, आत्मानन्द, चैतन्य, अद्वैत आदि अनन्त नामो का स्वामी हूँ। मै अखण्ड, अद्वैत, परमानन्द स्वरूप, निजकारण परमात्मा से परम तपोधन शुद्ध निश्चल उपयोग स्वरूप आत्मा हू, मेरा चैतन्य विलास शुद्ध निर्विकार अनुपम धाम स्वरूप है।

मैं अखण्डानन्द एक अद्वैत चेतन स्वरूप भावो से भरपूर शुद्ध जीवास्तिकाय हूँ। मैं शुद्ध निश्चयनय से विचार करता हू तो मैं न नारकी हू, न देव हू, न तिर्यंच हू, न मनुष्य हू, न मेरे मे गुणस्थान है, न मैं परका कर्त्ता, हर्त्ता व भोक्ता हूँ, न बालक हू, न युवा हू, न वृद्ध हूँ, न मैं क्रोधादि, रागादि परिणामो का

कर्त्ता हूँ, ये सर्व पुद्गल कृत कार्य हैं, मैं तो उनको मात्र जानने वाला ज्ञायक स्वभावी आत्मा हूँ। न मैं इन अवस्थाओं का कर्त्ता हूँ, न भोक्ता हूँ, मैं एक अखण्डानन्द चैतन्य मात्र ज्ञाता दृष्टा स्वभावी आत्मा हूँ। सदा मैं मेरे चैतन्य परिणाम का कर्त्ता और स्वभाविक सुख का भोक्ता हूँ। परका न मैं किंचित् मात्र कर्त्ता हूँ नभोक्ता हूँ।

आरम्भ और वहु परिग्रह के धारक अज्ञानी (व्यवहारी) जीव अपने रागादि सद्भाव मे उन नरकादि दुर्गतियो का भोग करते है जिनसे उनका जन्म मरण (ससार) नही मिटता है। मैं उन सर्व कृतियो से भिन्न हूँ। ससार दु ख कूप है, अनित्य है, अशरण है, दु खमय है, विनाशीक है, कनिष्ट है। मैं सुखरूप नित्य शरणरूप ज्ञायक ज्ञान दर्शन से परिपूर्ण हूँ।

मै एक परम शुद्ध पारिणामिक भाव का धारक हूँ। मैं परम चैतन्यमई एक ज्ञान सत्तामात्र सुख मे उत्कृष्ट आत्मिक तत्व के अनुभव मे लवलीन हूँ, मैं स्वभाविक निश्चयनय से सदा निरावरण, शुद्ध ज्ञान स्वरूपी हूँ। मै सहज चैतन्यमय शान्ति का धारक हूँ।

शुद्ध निश्चयनय से मेरा आत्मा सहज दर्शन गुण से प्रकाशमान, परिपूर्ण, चैतन्य मूर्ति, चेतना विलास को अनुभव करने वाला है। ऐसे सर्व विभाव भावो, विभावपर्यायो को त्याग कर मैं मेरे आत्मा का चिन्तवन करता हूँ। मैं अपने चित्त को सर्व इन्द्रिय-विषयो से हटाकर मेरे शुद्ध आत्मिक द्रव्य गुण पर्याय मे लगाता हूँ। जिससे मुझे शीघ्र ही मुक्तिरमा की प्राप्ति हो।

मै निश्चयनय से सहज शुद्ध ज्ञानानन्द स्वभावी निर्विकल्प हूँ, उदासीन हूँ, निजानन्द, निरजन, शुद्धात्मा, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चरित्र रूप निश्चय रत्नत्रयमयी, निर्वि-कल्प, समाधि से, उत्पन्न वीतराग, सहजानन्दरूप, आनन्दानुभूति मात्र स्वसवेदन-ज्ञान से गम्य हूँ, अन्य उपायो से गम्य नही हूँ निर्विकल्प निजानन्दज्ञान मात्र से ही मेरी प्राप्ति है, मै ज्ञान दर्शन से परिपूर्ण हू, मै तीन लोक तीन काल मे, मन वचन काय कृत कारित, अनुमोदना से उत्पन्न सुख, दुख, हर्ष, विषाद, लाभ अलाभ, मानापमान, भोगाभोग, निन्दा, प्रशसा, ममता, अहता, पाप, पुण्य, श्वेत, श्याम, गरीब, अमीर, ऊच, नीच, कुल, जाति, स्पृश्यास्पृश्य आदि सर्व विभाव पर्यायो से भिन्न एक चिदानन्द आत्माराम हूँ। सर्व जीव मेरे समान है, इसलिये मै किसको मित्र कहू व किसको शत्रु कहू ।

मै राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, पाचो इन्द्रियो का विषय व्यापार मन वचन काय, द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म, ख्याति, लाभ, पूजा, देखे, सुने, अनुभवे भोगो की वाछा रूपी निदान, माया, मिथ्यात्व तीनो शल्यो से और सर्व प्रकार के विकार विभाव और परभावो से भिन्न और निज भावो से अभिन्न एक अखण्डानन्द, टकोत्कीर्ण, निर्मोही, ज्ञायक स्वभावी आत्मा हूँ।

मै पर्यायार्थिकनय से अवलोकन करता हू तो मेरा आत्मा सर्व पर्यायो से सयुक्त है। ये सर्व विभाव भाव मेरे पर्यायार्थिक-

कर्म के निमित्त होते हैं, किन्तु वह मेरा स्वाभाविक भाव नहीं है, परन्तु औदयिक भाव है। और मैं परम शुद्ध पारिणामिक भाव का स्वामी हूँ। मेरा इनसे ज्ञेय ज्ञायक सम्बन्ध है, परन्तु कोई कर्म सम्बन्ध कदापि न था। न है और न हो सकता है क्योंकि जन्म, जरा, मृत्यु, मिथ्यत्व, कषाय, बंध, उदय, सत्ता, संस्थान, संहनन आदि कर्म के विपाक हैं। मैं इनका जानने वाला हूं, निश्चयनय से मैं एक शुद्ध, बुद्ध, निरंजन, निराकार, ज्ञाता, दृष्टा, अविनाशी, असहाय, अतीन्द्रिय, विमल, अचल, ज्ञायक मात्र वीतराग स्वरूपी, ज्ञानानन्द, निराकुल, सुखानन्द का स्वामी परम तत्त्वरूप हूं। मैं मेरे श्रुतज्ञान की भावना के अवलम्बन से सामान्य, विशेषात्मक, भेदाभेदरूप अपने ज्ञान स्वरूपी आत्मा का निरीक्षण करता हूं जिससे चैतन्य ज्योति प्रकाशमान होती है, जो हजारो सूर्य की किरणो से अनन्तगुणी उज्ज्वल है व हजारो चन्द्रमा से अनन्तगुणी निर्मल है। मैं ज्यो-ज्यो आर्ष वचनो का अभ्यास करता हूं व परमागम का चिन्तवन करता हू, त्यो-त्यों मेरे मे तीनो लोकों के स्वरूप को प्रकाशित करने मे सूर्य के समान भेद विज्ञान-रूप कला जागृत होती है और जैसे २ भेद विज्ञान बढता जाता है वैसे २ ही राग निवृतिरूप स्वरूप स्थिरता बढती जाती है और ज्ञान निश्चल निष्कम्प सुमेरु पर्वत के समान अचल अडोल होता जाता है अतः मैं आर्ष वचनो का अभ्यास पूर्वक श्रद्धान करता हूं।

मैं चेतन, असंख्यात प्रदेशी, मूर्तिक से रहित ज्ञान, दर्शन

लक्षण वाला, सिद्ध रूप, कर्म मल रहित शुद्धात्मा हू। मैं अन्य पदार्थ नही हू, और अन्य पदार्थ मेरे रूप मे नही है। मै अन्य का नही हू, और न अन्य ही मेरे हैं, अन्य, अन्य है, मैं, मैं हू, अन्य अन्य का है, मैं मेरा हू। शरीर जुदा है, मैं जुदा हू, मैं चेतन हू, शरीर अचेतन है, शरीर अनेक परमाणुओ का पिण्ड है, मैं एक हूँ, शरीर नश्वर है, मै अविनाशी हू, ससार के अचेतन पदार्थ मेरे रूप मे नही होते, और मै अचेतन नही होता, मै ज्ञानात्मा हू, मेरा कोई नही है, मै अन्य किसी का नही हूँ। जो यहा शरीर के साथ मेरा स्व-स्वामी सम्बन्ध हो रहा है, व एकत्व का भ्रम हो रहा है, वह सब पर (कर्म) के निमित्त से हो रहा है, स्वरूप से नही। जीवादि द्रव्य के यथार्थ स्वरूप को जानने वाला मै अपने द्वारा अपने मे, अपने को, जैसा कि मै हूँ, देखता हुआ पदार्थों के विषय मे उदासीन हूँ, राग द्वेष रहित होता हुआ मध्यस्थ हूँ।

मै सत् द्रव्य, चित् ज्ञाता दृष्टा, व हमेशा उदासीन स्वरूप हूँ और प्राप्त हुये अपने शरीर प्रमाण हूँ व उससे (शरीर से) पृथक् हुआ आकाश की तरह अमूर्त्त हूँ। मै सदा ही स्वरूपादि चतुष्टय (स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव) की अपेक्षा सत् रूप हूँ और पर रूपादि की अपेक्षा असत् रूप हूँ, जो कुछ नही जानते हैं, न जिनने कुछ जाना है और न भविष्य मे कभी जानेंगे, इस प्रकार त्रैकालिक आज्ञानता को लिए हुए जो शरीर आदिक हैं, वैसा मैं नही हू। जिसने पहले जाना था, जो आगे (भविष्य मे) जानेगा तथा वर्तमान मे जो चितवन करने योग्य है, ऐसा मै चिद्

द्रव्य हू, यह जगत स्वय न तो अच्छा (इष्ट) है और न बुरा (अनिष्ट) है किन्तु उपेक्षणीय है। तथा मै भी न तो राग करने वाला हू, न द्वेष करने वाला हू किन्तु उदासीन रूप हू। शरीर आदिक मुझ से भिन्न है, मै भी वस्तुत उनसे भिन्न हू, मै इनका कोई नही हू और न ये ही मेरे कोई हैं।

इस प्रकार भली भाति अपनी आत्मा को अन्य पदार्थों से भिन्न समझ, मै तनमयी भावो (आत्मयी भावो) को करता हुआ कुछ भी चिन्तन नही करता हू । आत्मा स्व और पर की ज्ञप्ति [जानन क्रिया] रूप है, अत उसका अन्य कोई और कारण नही है। इसलिये चिंता को हटा कर स्व संवित्ति (लीनता) के द्वारा ही अनुभव करना चाहिए । दर्शन, ज्ञान व समता रूप होने से जानने वाला, देखने वाला एव उदासीन रहने वाला जो चिद् सामान्य विशेष स्वरूप आत्मा है, उसे अपनी आत्मा के द्वारा ही अनुभव करना चाहिये। आत्मा कर्मजन्य [कर्म से पैदा होने वाले] समस्त भावो से भिन्न हैं, ज्ञातास्वभाव है और उदासीन है। ऐसा हमेशा स्वय चितवन करे। मिथ्या आग्रह व मिथ्याज्ञान से रहित जो आत्मा का स्वरूप है—जिसे माध्यस्थ भाव भी कहते हैं—उसको अपने मे स्वयं ही अनुभव करे। वह रूपादि रहित होने से इन्द्रिय ज्ञान द्वारा जाना नही जा सकता, वितर्क भी इसे जान नही सकते क्योकि वे (वितर्क) अस्पष्ट तर्कणारूप होते हैं। दोनो (इन्द्रियज्ञान व वितर्क) की प्रवृत्ति रुक जाने पर,

बिलकुल स्पष्ट अतीन्द्रिय और अपने द्वारा जानने योग्य वह (माध्यस्थ स्वरूप) स्व सवित्ति के द्वारा ही देखना चाहिये।

शरीर का प्रतिभास (भान) न होने पर भी जो स्वतत्र रूप से मालूम होती है ऐसी वह ज्ञानरूप चेतना स्वय ही दिखाई पडती है। समाधि मे स्थित पुरुष को यदि ज्ञान स्वरूप आत्मा का अनुभव नही होता तो वह उसका ध्यान ही नही है अपितु वह मूर्च्छावान है और उसकी वह मोह रूप दशा है इसलिये उस आत्मा के स्वरूप का अनुभव करने वाला मुमुक्षु उत्कृष्ट एकाग्रता को पाता है व स्वाधीन वचनो के अगोचर आनन्द को प्राप्त करता है। ऐसे अपने आत्मा का अवलोकन करना चाहिए, जैसे धूल धोया (मिट्टी को पानी मे धोकर उसमे से सोना निकालने वाला) कीचड (मिट्टी) मे से साधनो द्वारा सोना प्राप्त कर आनन्दित होता है वैसे ही ज्ञानी आत्मा कर्म रूपी कीचड मे से चैतन्य रूपी सोने को तपश्चरणादि साधनो द्वारा उठाकर (प्राप्तकर) बडा आनन्दित होता है ऐसी आत्मिक आनन्द की प्राप्ति के साधनो मे आत्म चितवन एक मुख्य साधन है, उसके विना अन्य साधन कार्यकारी नही हैं।

मेरा आत्मा शुद्ध निश्चयनय से स्पर्श रस गन्ध रूप, शब्द, शरीर, सस्थान, सहनन, राग, द्वेष, मोह, द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म, वर्ग, वर्गणा, स्पर्द्धक प्रत्यय, अध्यातम-स्थान, अणुभाग-स्थान, योगस्थान, बन्धस्थान, उदयस्थान, मार्गणास्थान, स्थितिबध-स्थान, सक्लेशस्थान, विशुद्धि-स्थान, सयमलब्धिस्थान, जीवस्थान,

गुणस्थान आदि कर्मजन्य भावो से भिन्न केवल शुद्ध ज्ञाता दृष्टा आनन्दमयी सिद्ध भगवान, शक्ति से (निरजन निर्विकार) है और अशुद्धनय से मेरा आत्मा नाना प्रकार की अवस्थाओ को ससार अवस्था मे धारण करने वाला है।

मैं चैतन्य मात्र ज्योतिरूप आत्मा हू कि जो मेरे अनुभव से प्रत्यक्ष ज्ञात होता है। चिन्मात्र आकार के कारण मे समस्त क्रमरूप तथा अक्रमरूप प्रवर्तमान व्यवहारिक भावो से भेदरूप नही होता, इसलिए मैं एक हू। नर नारक आदि जीव के विशेष अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, सवर, निर्जरा, वन्ध और मोक्ष स्वरूप जो व्यवहारिक नवतत्त्व हैं, उनसे टकोत्कीर्ण एक ज्ञायक स्वरूप *भाव के द्वारा अत्यन्त भिन्न हूँ इसलिये मैं शुद्ध हूँ।* *चिन्मात्र होने* से सामान्य विशेष उपयोग आत्मकता का उलघन नही करता, इसलिये मैं दर्शनज्ञानमयी हूँ। स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण जिसका निमित्त है ऐसे समवेदन रूप परिणामित होने पर भी स्पर्शादिक रूप स्वय परिणामित नही हुआ इसलिए परमार्थ से सदा ही अरूपी हू।

शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से मैं सर्व परद्रव्यो से भिन्न सर्वपर्यायो से एकाकार, हानि वृद्धि से रहित, विशेषो से रहित और नैमित्तिक भावो से रहित एक असाधारण ज्ञायकमात्र टकोत्कीर्ण शुद्ध जीवास्तिकाय द्रव्य हू और व्यवहार दृष्टि से देखने से मेरा आत्मा अनादि काल से पुद्गल कर्म के सम्बन्ध से बँधा हुआ कर्म पुद्गल के स्पर्श वाला दिखाई देता है। कर्म के निमित्त से होने वाली

नरनारकादि पर्यायो मे भिन्न २ स्वरूप मे दिखाई देता है, शक्ति के अविभाग प्रतिच्छेद (अश) घटते भी हैं और बढते भी हैं इस-लिए वह नित्य नियत एक रूप दिखाई नही देता तथा दर्शन ज्ञान आदि अनेक गुणो से विशेषरूप दिखाई देता है और कर्म के निमित्त से होने वाले मोह, राग, द्वेप आदि परिणामो कर सहित सुख दुख रूप दिखाई देता है ।

मैं यह परद्रव्य नही हूँ, यह परद्रव्य मुझ स्वरूप नही है, मै तो मै ही हू, पर द्रव्य परद्रव्य ही है, इस परद्रव्य का मै नही हू, मेरा ही मै हूँ, परद्रव्य का परद्रव्य है, इस परद्रव्य का मैं पहले नही था, यह परद्रव्य मेरा पहले नही था, मेरा मै ही पहले था, परद्रव्य का परद्रव्य पहले था, यह परद्रव्य मेरा भविष्य मे नही होगा, इसका मै भविष्य मे नहीं होऊगा, मै अपना ही भविष्य में होऊगा, इस परद्रव्य का यह परद्रव्य भविष्य मे होगा। ऐसा सम्यग्ज्ञानी का स्वद्रव्य मे सत्यार्थ आत्म विकल्प होता है ।

मोह का उदय होते हुये भी अपने बल से उपशमादिक करके एकत्व में टकोत्कीर्ण निश्चल और ज्ञान स्वभाव द्वारा अन्य द्रव्यो के स्वभाव से होने वाले सर्व अन्य भावों से परमार्थत मैं भिन्न हूँ, ऐसे अपने आत्मा को अनुभव करता है वह निश्चय से प्रकाशवान, अविनाशि, भगवान ज्ञान स्वरूपी आत्मा को पाता है, मेरा आत्मा भगवान ज्ञाता द्रव्य है । वह अन्य द्रव्य के स्वभाव से होने वाले अन्य समस्त परभावो को उनके अपने स्वभाव भाव से व्याप्त न होने से पररूप जानकर त्याग देता है, इसलिये जो पहले

जानता है, वही बाद मे त्याग करता है, अन्य तो कोई त्याग करने वाला नही है। मोह कर्म के उदय का स्वाद रागादिक है। वह चैतन्य के निज स्वभाव से भिन्न स्वादरूप है अर्थात् मोहकर्म का उदय कलुष भाव रूप है वह भाव भी मोह कर्म का भाव होने से जड पुद्गल द्रव्य का ही विकार है, (मोह का उदय विपाक, अनुभागरस) जब चैतन्य के उपयोग के अनुभव मे आता है तब उपयोग भी विकारी होकर रागादि रूप मलिन दिखाई देता है तब ज्ञानी अपने भेदज्ञान के बल से चैतन्य शक्ति की व्यक्ति जो ज्ञान दर्शनोपयोग मात्र है, उसको ग्रहणकर-पुद्गल जड द्रव्यकर्म, भाव मोह को दूर कर देता है अथवा चैतन्य के अनुभव रूप स्थित होता है क्योकि टकोत्कीर्ण एक ज्ञायक स्वाभाव भाव का परमार्थ से पर के भाव द्वारा भाव्य रूप करना अशक्य है इसलिये अतरग तत्व तो मै हूँ और वे पर द्रव्य मेरे स्वभाव से भिन्न स्वभाव वाले होने से परमार्थत बाह्य तत्व अपने स्वभाव का अभाव करके ज्ञान मे प्रविष्ट नही होते।

सर्व पर द्रव्यो से तथा उनसे उत्पन्न हुए भावो से जब भेद जाना तब उपयोग के रमण के लिये अपना आत्मा ही रहा अन्य ठिकाणा नही रहा इस प्रकार दर्शन ज्ञान चरित्र के साथ एक रूप, वह आत्मा मे ही रमण करता है अथवा परमार्थ से एक नित्य उपयोग आत्मक अनाकूल चैतन्य का अनुभव करता हुआ भगवान आत्मा ही जानता है कि मै प्रगट निश्चय से एक ही हूँ इसलिये ज्ञेय ज्ञायक भाव मात्र से उत्पन्न परद्रव्यो के साथ परस्पर

मिलन होने पर भी प्रगट स्वाद मे आते हुए स्वभाव के भेद के कारण धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और अन्य जीवो के प्रति मे निर्ममत्व हूँ, क्योकि कोई पदार्थ अपने स्वभाव को कदापि नही छोडता, जैसे फूल की कली खिलती है, विकाशरूप विलास को पाती है तैसे भेद-विज्ञान रूप कली अपने आत्मा रूपी क्रीडा वन मे रमण करती है, अनन्त ज्ञेयो का आकार विशुद्ध निर्मल स्वच्छ ज्ञान मे स्वय प्रतिभाष होता है, तथापि वह स्वय अपने स्वरूप मे ही रमता है, क्योकि निर्मल ज्ञान का प्रकाश, अनन्त हैं और वह प्रत्यक्ष तेज से नित्य उदय रूप, धीर, उदात्त सर्व इच्छाओ से रहित निराकुल शात चैतन्य रस मे निर्मग्न करता है अथवा अपने ज्ञेयाकार को छोड कर कदापि अनन्त रूप न हुआ है और न हो सकता है। ज्ञेयो के आकार का निमित्त पाकर अनन्त ज्ञानाकार होते हुए भी सामान्य, सहज स्वरूप ज्ञान, अपने आकार को नही छोडता ऐसा ज्ञान सम्यग्दृष्टि को सदा जागृत रूप है क्योकि ज्ञेयाकारो से ज्ञानाकारो होता है, वह ज्ञान का धर्म है ज्ञान का धर्म स्व-पर प्रकाशक है वह ज्ञान की स्वच्छत्व शक्ति है और जो ज्ञेय पदार्थों के विशेष रूप आकारो मे उपयुक्त होती है ऐसी ज्ञानोपयोगमयी ज्ञान शक्ति प्रतापवन्त है।

मैं तत्व दृष्टि (अतरदृष्टि) से देखता हूँ तब मैं, मेरे मे एक व्यक्त, निश्चल, शाश्वत, नित्य निष्कलक, अनुपम, अचल, ध्रुव, निराकुल, अविनाशी, एकाकार, ज्ञानानन्दमयी, ज्योति स्वरूप, शुद्ध, बुद्ध, निर्मल, अविनश्वर, अविचल, सुखामृत, अवि-

कार, धीर, उदात्त, स्वसवेद्य रूप प्रतिभाषता हू । मैं मेरे मे मेरे से ग्राहक होकर एकाकार अखण्डित, तेज पु ज, चेतन चमत्कार मात्र दैदीप्यमान, चैतन्य विलास, उज्ज्वल, निर्दोष सर्वोपरितत्व, विज्ञानघन, चकचकित, चिदविलास, चिन्मात्र ज्योति स्वरूप प्रतिभाष होता हूँ । सम्पूर्ण विश्व को जानने वाले, प्रत्यक्ष प्रकाश-रूप स्वभाव से अन्त.करण मे नित्य प्रकाशमान, अविनश्वर, स्वत सिद्ध, पर परमार्थ से विद्यमान ऐसे भगवान ज्ञान स्वभाव से आत्मा, भिन्न पदार्थ के स्वभाव से जिनका अस्तित्व रहता है ऐसे सभी भिन्न पदार्थों से जो परमार्थ दृष्टि से भिन्न रूप से जानता है, अनुभवता है वह निश्चल से जितमोहजिन है ।

उदयागत मोहकर्म, जिसमे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र की एकाग्रता होती है ऐसे निर्विकल्प समाधि के बल से जीता जाता है, क्योकि समाधि रत जीव समस्त परभावो के विषय मे पराड् मुख बन जाता है ।

मेरी आत्मा परिपूर्ण रूप से शुद्धज्ञान रूप स्वभाव से व्याप्त है । ऐसी इस आत्मा को अपनी आत्मा मे स्थापित कर उसके शुद्ध घनरूप एकत्वता मैं स्वय अनुभव करता हूँ । द्रव्य-भावरूप मोह मेरा है ही नही, क्योकि आत्मा ज्ञानस्वभाव वाली होने से और मोहनीयकर्म पुद्गल कर्मजन्य होने से दोनों विजातीय है । मै तो शुद्धज्ञानघन के तेज का निधान हूँ, मैं सिद्ध निरंजन परमात्मा हूँ. मुझ से अन्य राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभादि भावकर्म, ज्ञानावरणादि, द्रव्यकर्म, शरीरादि नोकर्म-

सर्व अन्य ही हैं। वे क्षणिक, मैं सुखस्वभाव हूँ। वे मूर्तिक, मैं अमूर्तिक हूँ। वे दुखस्वभाव, मैं सुख स्वभाव हूँ। वे उपाधि रूप, मैं निरुपाधि हूँ। वे सकलक, मैं नि कलक हूँ। वे पराधीन, मैं स्वाधीन हूँ, उनका मेरा जरा भी मेल नही। जो उनकी सगति करें वह सदोषी हो। जो मेरी सगति करे वह निर्दोषी हो। मेरी सम्पति अविनाशी, उनकी विभूति विनाशीक है। मैं अपने निज आत्मानुभव की भावना से परम तृप्त हूँ। मुझमे जन्म जरा रोग व्यापते नही, कर्म रिपु मेरा मुँह देखते नही, मैंने अपनी अनुभूति की भूमि मे ही अपना अगम दुर्ग बनाया है, उसीमे निवास करता अपनी चिदनुभूति रानी के साथ सुख से क्रीड़ा कर रहा हू। मुझे भोजन, वस्त्र, आभूषण, सुगन्ध, लेप, तेल, फुलेल, शय्या, आसन की आवश्यकता नही। अपना सुधा समूह, अपना भोजन, अपनी निर्मल प्रदेशावली, अपना वस्त्र, अपना ब्रह्मरूपशील, अपना आभूषण, अपना ज्ञान, अपनी सुगध, अपनी तन्मयता, अपना लेप, अपना आत्मवीर्य, अपना तेल फुलेल, अपनी शय्या, अपनी रूप प्रगटता, अपना निरावलम्बन स्वभाव अपना आसन है। यही सामग्री मेरे और मेरी चिदनुभूति सर्वांगनी के लिए सन्तोष और आनन्द प्रदायक है। मेरे दुर्ग मे अन्य किसी मेरे विरुद्धपक्ष का प्रवेश नही। मैं अपनी अद्भुत शक्ति का आप स्वामी हूँ। मैं सबको देखता हूँ, परन्तु मुझे कोई नही देखता। मैं किसी के पास जाता नही, परन्तु सब मेरे निर्मल आत्मदर्पण मे (जो मेरे ही अनुपम शय्या महल मे लगा है) आपसे आप

अपनी समय २ की परिणतियो के लिए आ आकर मुझे अपना रूप दिखा रहे हैं। मुझसे अन्य जन परस्पर एक दूसरे को राग से ग्रहण करते है, परन्तु मै अपनी चिदनुभूतिरूप पटरानी के सिवाय किसी को ग्रहण कर पर–पद–रत नही होता।

आलोचना

जो पस्सदि अप्पाणं समभावे संठवित्तु परिणामं।
आलोयण मिदि जाणह, परम जिणंदस्स उवएसं ॥ नियमसार ॥
॥ १०९ ॥

अर्थात् जो (जीव) परिणाम को समभाव मे स्थाप कर (निज) आत्मा को देखता है वह आलोचन है, ऐसा परमजिनेन्द्र का उपदेश जानना।

भगवती आराधना मे कहा है कि अपने द्वारा किये गए अपराधो या दोषो को छिपाने का प्रयत्न न करके, उसका त्याग करना निश्चय आलोचना है तथा चारित्राचरण करते समय जो अतिचार होते हैं उसकी पश्चाताप पूर्वक निन्दा करना व्यवहार आलोचना है। प्रतिक्षण उदित होने वाली कषायो जनित जो अन्तरंग व बाह्य दोष साधक की प्रतीति मे आते हैं जीवन शोधन के लिए उनका दूर करना अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रयोजन

की सिद्धि के लिए आलोचना सबसे उत्तम मार्ग है। गुरु के समक्ष निष्कपट भाव से अपने दोषो को कह देना आलोचना कहलाता है। राजवार्तिक मे कहा है कि लज्जा और पर तिरस्कार आदि के कारण, दोषो का निवेदन करके भी यदि उनका शोधन नही किया जाता है तो अपनी आमदनी और खर्च का हिसाब न रखने वाले कर्जदार की तरह दुःख का पात्र होना पड़ता है। बडी भारी दुष्कर तपस्याएँ भी आलोचना के बिना, उसी तरह इष्ट फल नही दे सकती जिस प्रकार विरेचन से शरीर मल की शुद्धि किये बिना, खायी गयी औषधि।

मोक्ष मार्ग मे मुख्य प्रयोजन अपने परिणामो की सम्हाल करना है, कवि भागचन्दजी ने भी कहा है—

निज परिणामनि की सम्भाल मे ताते गाफिल मत ह्वै प्रानी।
बध मोक्ष परिणामनि ही सो, कहत सदा श्री जिनवर वानी॥

हम किसी पाठ मात्र का उच्चारण करके ही आलोचना करना समझ लेते हैं किन्तु यह वास्तविक आलोचना नही है। आलोचना करना हमारा तभी सार्थक है जबकि हम अपने दोषो का वर्णन करके पश्चाताप पूर्वक निन्दा करें और भविष्य मे वैसे दोष न करने की प्रतिज्ञा करें।

कल्लाणालोयणा

परमप्पयं वड्ढमइं परमेट्ठीणं करेमि णवकारं ।
सग परसिद्धिणिमित्तं, कल्लाणालोयणा वोच्छं ॥१॥
रे जीवाणंतभवे संसारे संसरंत बहुवारं ।
पत्तो ण बोहिलाहो मिच्छत्तविजंभपयडीहिं ॥२॥
संसारभमणगमणं कुणंत आराहिओ ण जिणधम्मो ।
तेण विणा वरदुक्खं पत्तो सि अणंतवाराइं ॥३॥
संसारे णिवसंतो अणंतमरणाइ पाविओ मि तुमं ।
केवलि विणा य तेसिं संखा पज्जत्ति णो हवइ ॥४॥
तिण्णिसया छत्तीसा छावट्ठिसहस्सवारमरणाइं ।
अंतोमुहुत्तमज्झे पत्तोमि णिगोयमज्झम्मि ॥५॥
वियलिंदिए असीदी सट्ठी चालीसमेव जाणीहि ।
पंचिंदिय चउवीसं खुद्दभवंतो मुहुत्तस्स ॥६॥
पुढविदगागणिमारुदसाहारणथूलसुहुमपत्तेया ।
एदेसु अपुण्णेसु य एक्केक्के वार खं छक्कं ॥७॥
अण्णोण्णं खज्जंता जीवा पावंति दारुणं दुक्खं ।
ण हु तेसिं पज्जत्तिं कह पावइ धम्ममइसुण्णो ॥८॥

माया पिया कुडुंवो सुजणजणो को वि णायाइ सद्धं ।
एगागी भमइ सदा ण हि विदिओ अत्थि संसारे ॥९॥
आउक्खए वि पत्ते ण समत्थो को वि आउदाणे य ।
देविंदो ण णरिंदो मणि-ओसह-मंतजालाई ॥१०॥
संपडि जिणवरधम्मं लद्धो सि तुमं विसुद्धजोएण ।
खामसु जीवा सव्वे पत्तेयसमये पयत्तेण ॥११॥
तिण्णिसया तेसट्ठी मिच्छत्ता दंसणस्स पडिवक्खा ।
अण्णाणे सद्दहिया मिच्छा मे दुक्कड हुज्ज ॥१२॥
महु-मज्ज-मंस-जूआपहुदीवसणाइं सत्तभेयाइं ।
णियमो ण कओ तेसिं मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥१३॥
अणुवय महव्वया जे जम णियमा सील साहुगुरुदिण्णा ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥१४॥
णिच्चिदरधादुसत्त य तरु दस वियलिंदिएसु छच्चेव ।
सुर-णरय-तिरियचदुरो चउदस मणुए सदसहस्सा ॥१५॥
एदे सव्वे जीवा चउरासीलक्खजोणिवसि पत्ता ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥१६॥
पुढवि जलग्गि वाऊ तेऊ वणप्फई वियलतसा ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥१७॥

मल सत्तरी जिणुत्ता वयविसए जा विराहणा विविहा ।
सामाइय खमाइया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥१८॥
फल फुल्ल छल्लि वल्ली अणगलण्हाणं च धोवणाईहिं ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥१९॥
णो सीलं णेव खमा विणओ तवो ण संजमोववासा ।
ण कया ण भाविया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥२०॥
कंद फल मूल बीया सचित्त रयणीभोयणाहारा ।
अण्णाणे जे वि कया मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥२१॥
णो पूया जिणचरणे णं पत्तदाणं ण चेरियागमणं ।
ण कया ण भाविया मई मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥२२॥
बंभारंभ परिग्गह सावज्जा बहु पमाददोसेण ।
जीवा विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥२३॥
सत्तरिसयखेत्तभवा तीदाणागयसुवट्टमाणजिणा ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥२४॥
अरुहा सिद्धाइरिया उवझाया साहु पंच परमेट्ठी ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥२५॥
जिणवयण धम्म चेइय जिणपडिमा किट्टिमा अकिट्टिमया ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥२६॥

दंसण णाण चरित्ते दोसा अट्ठट्ठ पंचभेयाइं ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥२७॥
मइ–सुय–ओही मणपज्जयं तहा केवलं च पंचमयं ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥२८॥
आयारादी अंगा पुव्व–पइण्णा जिणेहिं पण्णत्ता ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥२९॥
पंचमहव्वयजुत्ता अट्ठादससहस्ससीलकयसोहा ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥३०॥
लोये पियासमाणा रिद्धिपवण्णा महागणवइया ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥३१॥
णिग्गंथ अज्जियाओ सड्ढा सड्ढी य चउविहो संघो ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥३२॥
देवासुरा मणुस्सा णेरइया तिरियजोणिगयजीवा ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥३३॥
कोहो माणो माया लोहो एए राय–दोसा य ।
अण्णाणे जे वि कया मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥३४॥
परवत्थू परमहिला पमादजोएण अज्जियं पावं ।
अण्णा वि अकरणीया मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥३५॥

एक्को सहावसिद्धो सो अप्पा वियप्पपरिमुक्को ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥३६॥

अरस अरूप अगंधो अव्वाबाहो अणंतणाणमओ ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥३७॥

णेयपमाणं णाणं समए एगम्हि होदि ससहावे ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥३८॥

एयाणेयवियप्पपसाहणे सगसहावसुद्धगई ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥३९॥

देहपमाणो णिच्चो लोयपमाणो वि धम्मदो होदि ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥४०॥

केवलदंसण-णाणं समए एगम्हि दुण्णि उवजोगा ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥४१॥

सगरूवसहजसिद्धो विहावगुणमुक्ककम्मवावारो ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥४२॥

सुण्णो णेव असुण्णो णोकम्म-कम्मवज्जिओ णाणं ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥४३॥

णाणाउ जो ण भिण्णो वियप्पभिण्णो सहावसोक्खमओ ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥४४॥

अच्छिण्णोवच्छिण्णो पमेयरूवत्तागुरुलहू चेव ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥४५॥
सुह–असुहभावविगओ सुद्धसहावेण तम्मयं पत्तो ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥४६॥
णो इत्थी ण णउंसो णो पुंसो णेव पुण्णपावमओ ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥४७॥
ते कोण होदि सुजणो तं कस्स ण बंधवो ण सुयणो वा ।
अप्पा हवेइ अप्पा एगागी जाणगो सुद्धो ॥४८॥
जिणदेवो होउ सया मई सुजिणसासणे सया होउ ।
सण्णासेण च मरणं भवे भवे मज्झ संपदओ ॥४९॥
जिणो देवो जिणो देवो जिणो देवो जिणो जिणो ।
दयाधम्मो दयाधम्मो दयाधम्मो दया सया ॥५०॥
महासाहू महासाहू महासाहू दिगम्बरा ।
एवं तच्चं सदा हुज्ज जाव णो मुत्तिसंगमो ॥५१॥
एवमेव गओ कालो अणंतो दुक्खसंगमे ।
जिणुवदिट्ठ संणासे ण यत्तारोहणा कया ॥५२॥
संपइ एव संपत्ताराहणा जिणदेसिया ।
किं किं ण जायदे मज्झं सिद्धिसंदोहसंपई ॥५३॥

अहोधम्मो अहोधम्मो अहो मे लद्धि णिम्मला ।
संजाया संपया सारा जेण सुक्खमणूवमं ॥५४॥
एवं आराहंतो आलोयण वंदणा पडिक्कमणं ।
पावइ फलं य तेसिं णिद्दिट्ठं अजिय बम्भेण ॥५५॥

कल्याणालोचना

(हिन्दी पद्यानुवाद)

मैं नमन करता इष्ट जिनको, शुद्ध ज्ञान स्वरूप जो ।
कल्याण आलोचन कहूँ अब, स्व पर हित अनुरूप जो ॥१॥
हे जीव तू मिथ्यात्व वश ही, लोक मे फिरता रहा ।
पर बोधि लाभ विना अनन्तो व्यर्थ भव धरता रहा ॥२॥
ससार मे भ्रमते हुए जिन धर्म, यह न तुझे रुचा ।
जिसके बिना तू अनन्त दुख मे, आज तक रह रह पचा ॥३॥
ससार मे रह कर अनन्तो जन्म ले ले कर थका ।
पर धर्म विन नहिं हाय उनका अन्त अब तक कर सका ॥४॥
छयासठ सहस अरु तीन सौ छत्तीस भव तक धर लिये ।
अन्तमुहूर्त प्रमाण मे अरु निगोद मध्य मरे जिये ॥५॥
द्वि इन्द्रिय मे अस्सी तथा भव साठ हैं ती इन्द्रिय मे ।
चतुरिन्द्रिय मे चालीस अरु चौबीस हैं पचेन्द्रिय मे ॥६॥

पृथ्वी प्रभृति एकेन्द्रिय मे जो हैं अपर्याप्तक अभी।
छह सहस अरु बारह भवो को एकैक धरते सभी ॥७॥
अन्योन्य भक्षरण वे करे सहकर सदा दारुण व्यथा।
पर्याप्ति बिन मति शून्य कैसे धर्म की चाहे कथा ॥८॥
माता पिता बन्धू स्वजन जाता न कोई साथ है।
ससार मे भ्रमता हुआ प्राणी सदैव अनाथ है ॥९॥
आयु क्षय के वाद मे कोई न जीवन दे सके।
देवेन्द्र या मनुजेन्द्र मणि औषधि न कुछ भी कर सके ॥१०॥
त्रि शुद्धियोग प्रभाव से जिनधर्म यह तुझको मिला।
करदे क्षमा सबको भुवन में साम्य रस अमृत पिला ॥११॥
हा तीन सौ त्रेसठ मतोका, कुमति वश आश्रय लिया।
सम्यक्त्व को घाता सदा, हो पाप मिथ्या जो किया ॥१२॥
मद्य मांस तथा न मधु को, त्यागा न व्यसनो को त्रिधा।
यम नियम भो नहि कर सका वे पाप सारे हो मुधा ॥१३॥
अणुव्रत महाव्रत यम नियम गुरु ज्ञान शील स्वभाव ये।
जो जो विराधे हो सभी, दुष्कृत मुधा मेरे लिये ॥१४॥
एक इन्द्रिय के लाख बावन अरु विकल छह लाख हैं।
सुर नरक पशु सब लाख बारह मनुज चौदह लाख हैं ॥१५॥
मुझसे चुरासी लाख ये सब मरे पिटे सहस्रधा।
खेद उनका हो रहा है पाप मेरे हो मुधा ॥ १६ ॥
ये भूमि जल पावक तथा वायू हरित विकलत्रिक।
जो जो विराधे उन सभी का पाप मिथ्या हो स्वक ॥१७।

अतिचार सत्तर सब व्रतो के जो किये मैंने त्रिधा ।
समता क्षमा छूटी कभी वे पाप सब होवे मुधा ॥१८॥
फल पुष्प छल्ली बेल खाये, अनछना जो जल पिया ।
वस्त्र धोया; तन सजोया, पाप शून्य बने हिया ॥१९॥
जो शील तप सयम विनय उपवास या उत्तम क्षमा ।
धारण न इनको कर सका वे पाप सारे हो क्षमा ॥२०॥
फल कन्द मूल सचित्त खाये रात्रि भोजन या त्रिधा ।
अज्ञान वश जो जो किये वे पाप सारे हो मुधा ॥२१॥
नहिं देव पूजा दान भी सत्पात्र को न दिया त्रिधा ।
गमनागमन व अयत्न वश सब पाप वे होवे मुधा ॥२२॥
नहि ब्रह्म पाला कुसग छोडा बन प्रमादी जन त्रिधा ।
अरु जीव वध भक्षण किये हा पाप सारे हो मुधा ॥२३॥
कर्म भू के गत अनागत अरु साम्प्रतिक जितने त्रिधा ।
तीर्थकरो का मार्ग छोडा वे पाप सारे हो मुधा ॥२४॥
अरिहत सिद्धगणी तथा पाठक यती सब ही त्रिधा ।
जो जो विराधे उन सभी का पाप सब होवे मुधा ॥२५॥
जिनधर्म प्रतिमा चैत्य वच अरु कृत्रिमा व अकृत्रिमा ।
जो जो विराधे उन सभी का पाप सब होवे क्षमा ॥२६॥
दर्शन ज्ञान व चरित्र है जो आठ आठ व पचधा ।
जो जो विराधे उन सभी का पाप सब होवे मुधा ॥२७॥
मतिश्रुत अवधि अरु मन पर्यय और केवल ये त्रिधा ।
जो जो विराधे उन सभी का पाप सब होवे मुधा ॥२८॥

आचार आदिक अंग जिन अनुरूप पूर्व प्रकीर्णक ।
जो जो विराधे उन सभी का पाप मिथ्या हो स्वतः ॥२९॥
पाचो महाव्रत सहस अठदस शीलधारी मुनि तथा ।
जो जो विराधे उन सभी का पाप सब होवे वृथा ॥३०॥
है जनकसंम शुभ ऋद्धिधारी लोक मे गणपति महा ।
जो जो विराधे उन सभी का पाप मिथ्या हो अहा ॥३१॥
निर्ग्रन्थ आर्या श्राविका श्रावक चतुर्विध सघ भी ।
जो जो विराधे उन सभी का पाप मिथ्या हो अभी ॥३२॥
सुर असुर नारक या तिर्यक् की योनि के प्राणी सभी ।
जो जो विराधे उन सभी का पाप मिथ्या हो अभी ॥३३॥
क्रोधादि चार कषाय जो हैं राग द्वेष स्वरूप हा ।
अज्ञानवश इनको भजा मैं पाप मिथ्या हो महा ॥३४॥
पर वस्तु पर रमणी प्रमादी बन किये जो पाप भी ।
करणीय नहिं जो वह किया, वे पाप मिथ्या हो सभी ॥३५॥
मुझमे स्वभाव सुसिद्धता अरु सब विकल्प विमुक्तता ।
कुछ अन्य मुझको शरण नाही है शरण निज शुद्धता ॥३६॥
नीरस अरूप अगन्ध सुखमय व अबाध ज्ञानमयी स्वत ।
कुछ अन्य मुझको शरण नाही है शरण निज शुद्धता ॥३७॥
निज भावमे रहता हुआ जो ज्ञान सबको जानता ।
कुछ अन्य मुझको शरण नाही है शरण निज शुद्धता ॥३८॥
है एक और अनेक तो भी नहिं तजे निजरूपता ।
कुछ अन्य मुझको शरण नाहीं, है शरण निज शुद्धता ॥३९॥

है नित्य देह प्रमाण किन्तु स्वभाव लोक प्रमाणता ।
कुछ अन्य मुझको शरण नाही है शरण निज शुद्धता ॥४०॥
कैवल्य से युगपत् सभी को देखता अरु जानता ।
कुछ अन्य मुझको शरण नाही है शरण निज शुद्धता ॥४१॥
है सहज सिद्ध विभाव शून्य व कर्म से न्यारा स्वत ।
कुछ अन्य मुझको शरण नाही है शरण निज शुद्धता ॥४२॥
जो शून्य होकर शून्य नाही कर्म वर्जित ज्ञानता ।
कुछ अन्य मुझको शरण नाही है शरण निज शुद्धता ॥४३॥
है भिन्न सर्व विकल्प सुखमय ज्ञान से नहिं भिन्नता ।
कुछ अन्य मुझको शरण नाही है शरण निज शुद्धता ॥४४॥
है अछिन्न अछिन्न नाही अगुरुलघुत्व प्रमेयता ।
कुछ अन्य मुझको शरण नाही है शरण निज शुद्धता ॥४५॥
शुभ या अशुभ से भिन्न होकर निज स्वभाव सु लीनता ।
कुछ अन्य मुझको शरण नाही है शरण निज शुद्धता ॥४६॥
स्त्री पुरुष नहिं षढ नाही, अरु पाप पुण्य विभिन्नता ।
कुछ अन्य मुझको शरण नाही है शरण निज शुद्धता ॥४७॥
तेरा नही कोई न तू है बन्धु बान्धव अन्य का ।
है शुद्ध एकाकी सदा तू, आप रहता आपका ॥४८॥
जिनधर्म की सेवा तथा शासन सुप्रेमी बन सदा ।
सन्यास पूर्वक मरण होवे प्राप्त हो निज सम्पदा ॥४९॥
जिन देव ही इक देव है जिन देव से ही प्रीत है ।
जो दयामय धर्म बस उस धर्म से ही जीत है ॥५०॥

साधू महा साधू महा जो है दिगम्बर साधुजन ।
पाऊं न जब तक मुक्ति तब तक भाव ये होवें सुमन ॥५१॥
व्यर्थ मेरा काल बीता दुख अनन्तो भोग कर ।
जिन कथित नहिं सन्यास पाया यत्न से सुविचारकर ॥५२॥
इस समय जो प्राप्त की आराधना जिनदेव की ।
होगी न मेरी कौनसी शुभ सिद्धि अब स्वयमेव ही ॥५३॥
सद् धर्म की महिमा बडी है लब्धि भी निर्मल अहो ।
जिससे मिला सम्प्रति मुझे अनुपम महा सुख यह अहो ॥५४॥
विधि वन्दना प्रतिक्रमण की आलोचना भी है यही ।
आराधना जो सविधि उसको प्राप्त होती सुख मही ॥५५॥

आलोचना पाठ

(श्री गिरधर शर्मा कृत)

हैं दोष है गुण महेश मनुष्य हूं मैं ।
है पुण्य पापमय मानव देह मेरा ।
जो नाथ दोष व्रत के मुझसे हुए हो ।
कीजे क्षमा कर कृपा भगवान याचू ॥१॥
मैंने प्रभो स्वपर का हित ना विचारा ।
अज्ञान मोह वश दुर्गुण चित्त धारा ।
पूरा किया न जगदीश्वर काम प्यारा ।
कीजे क्षमाकर कृपा भगवान याचू ॥२॥

जिह्वा रही न वश मे रस भी न छोडा ।
मोडा न नेक मुख दुर्दम वृत्तियो से ।
नाना अनर्थ कर अर्थ समर्थ जोडा ।
कीजे क्षमा कर कृपा भगवान याचू ॥३॥

हे नाथ ध्यान धरके तुमको न ध्याया ।
स्वाध्याय मे मन लगा न मजा उडाया ।
पाया प्रमोद विकथा कर नाथ मैंने ।
कीजे क्षमा कर कृपा भगवान याचू ॥४॥

मैंने प्रमादवश दुर्गुण भी किये हैं ।
गार्हस्थ्य कर्म यत्ना बिन हो गए हैं ।
हा लोक के हृदय भी मुझ से दुखे है ।
कीजे क्षमा कर कृपा भगवान याचू ॥५॥

आराधना मन लगा कर की न तेरी ।
देती रही जगत मे चल वृत्ति फेरी ।
ऐसी हुई प्रभु भयकर भूल मेरी ।
कीजे क्षमा कर कृपा भगवान याचू ॥६॥

बाधे प्रभू सुकृत के बहुधा नियाणै ।
नाना प्रकार रस हास्य विलास माणै ।
जाने न कर्म रिपु ना तुमको पिछाने ।
कीजे क्षमा कर कृपा भगवान याचू ॥७॥

अध्यात्म का रस पिया छक खूब मैंने ।
ससार का हित किया भरपूर मैंने ।

आलोचना इस तरह करते बनी ना ।

कीजे क्षमा कर कृपा भगवान याचू ॥८॥

षटकाय जीव करुणा करते न हारा ।

मारा प्रमाद मन मे न कषाय धारा ।

आलोचना इस तरह करते बनी ना ।

कीजे क्षमा कर कृपा भगवान याचू ॥९॥

ससार का हित महेश महा करै तू ।

है ये प्रसिद्ध अमनस्क मुनीन्द्र है तू ।

तो भी तुझे न अपना मन दे सका मैं ।

कीजे क्षमा कर कृपा भगवान याचू ॥१०॥

गभीर ध्यान धरके भगवान का जो ।

आलोचना पढ करें निज शुद्ध देही ।

हो जाति रत्नकीर्ति अनन्य पावे ।

सद्द्रव्य सिद्धि वर पत्तन को वसावे ॥११॥

卐 卐 卐

आलोचना पाठ

दोहा—बदो पाचो परम गुरु, चौवीसो जिनराज ।

करू शुद्ध आलोचना, शुद्धि करन के काज ॥१॥

सखी छन्द—सुनिये जिन अरज हमारी हम दोष किये अति भारी ।

तिनकी अव निर्वृत्ति काज, तुम सरन लही जिनराज ॥२॥

इक वे ते चउ इन्द्री वा, मन रहित सहित जे जीवा।
तिनकी नहिं करुणा धारी, निरदइ ह्वै घात विचारी ॥३॥
समरभ समारभ आरभ, मन वच तन कीने प्रारभ।
कृत कारित मोदन करिकै, क्रोधादि चतुष्टय धरिकै ॥४॥
शत आठ जु इमि भेदन तै, अघ कीने परिछेदन तै।
तिनकी कहु कोलो कहानी, तुम जानत केवलज्ञानी ॥५॥
विपरीत एकात विनय के, सशय अज्ञान कुनय के।
वश होय घोर अघ कीने, वच ते नहिं जाय कहीने ॥६॥
कुगुरुन की सेवा कीनी, केवल अदया करि भीनी।
या विधि मिथ्यात भ्रमायो, चहु गति मधि दोष उपायो ॥७॥
हिसा पुनि झूठ जु चोरी, पर वनिता सो दृग जोरी।
आरभ परिग्रह भीनो, पन पाप जु या विधि कीनो ॥८॥
सपरस रसना घ्रानन को, चखु कान विषय सेवन को।
वहु करम किये मन माने, कछु न्याय अन्याय न जाने ॥९॥
फल पच उदवर खाये, मधु मास मद्य चित चाये।
नहिं अष्ट मूल गुणधारी, विसमन सेये दुखकारी ॥१०॥
दुइवीस अभख जिन गाये, सो भी निश दिन भुञ्जाये।
कछु भेदाभेद न पायो, ज्यो त्यो करि उदर भरायो ॥११॥
अनतानु जु वधी जानो, प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो।
सज्वलन चौकरी गुनिये, सब भेद जु षोडश मुनिये ॥१२॥
परिहास अरति रति शोग, भय ग्लानि तिवेद सयोग।
पन वीस जु भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम ॥१३॥

निद्रा वश शयन कराई, सुपने मधि दोष लगाई ।
फिर जागि विषय वन धायो, नाना विध विष फल खायो ॥१४॥
किये अहार निहार विहारा, इनमे नहिं जतन विचारा ।
विन देखी धरी उठाई, विन शोधी वस्तु जु खाई ॥१५॥
तब ही परमाद सतायो, बहुविधि विकलप उपजायो ।
कछु सुधि बुधि नाहिं रही है, मिथ्या मति छाय गयी है ॥१६॥
मरजादा तुम ढिग लीनी, ताहू मे दोष जु कीनी ।
भिन भिन अब कैसें कहिये, तुम ज्ञान विषें सब पइये ॥१७॥
हा हा मैं दुठ अपराधी, त्रस जीवन राशि विराधी ।
थावर की जतन न कीनी, उर मे करुना नहिं लीनी ॥१८॥
पृथिवी बहु खोद कराई, महलादिक जागा चिनाई ।
पुनि बिन गाल्यो जल ढोल्यो, पखाते पवन विलोल्यो ॥१९॥
हा हा मैं अदयाचारी, बहु हरित काय जु विदारी ।
ता मधि जीवन के खदा, हम खाये धरि आनन्दा ॥२०॥
हा हा परमाद बसाई, विन देखे अगनि जलाई ।
ता मधि जे जीव जु आये, ते हू परलोक सिधाये ॥२१॥
बीध्यो अन राति पिसायो, ईंधन बिन सोधि जलायो ।
झाडू ले जागा बुहारी, चिवटी आदिक जीव विदारी ॥२२॥
जल छानि जिवानी कीनी, सो हू पुनि डारि जु दीनी ।
नहिं जल थानक पहुँचाई, किरिया विन पाप उपाई ॥२३॥
जल मल मोरिन गिरवायो, कृमि कुल बहु घात करायो ।
नदियन बिच चीर धुवाये, कोसन के जीव मराये ॥२४॥

अन्नादिक शोध कराई, ता मे जु जीव निसराई।
तिनका नहिं जतन कराया, गरियालै धूप डराया ॥२५॥
पुनि द्रव्य कमावन काज, बहु आरभ हिसा साज।
किये तिसना वश अघ भारी, करुना नहिं रच विचारी ॥२६॥
इत्यादिक पाप अनन्ता हम कीने श्री भगवन्ता।
सतति चिरकाल उपाई, वानी ते कहिय न जाई ॥२७॥
ताको जु उदय अब आयो, नाना विध मोहि सतायो।
फल भुजत जिय दुख पावै, वचते कैसे करि गावे ॥२८॥
तुम जानत केवल ज्ञानी, दुख दूर करो शिव थानी।
हम तो तुम शरण लही है जिन तारण विरद सही है ॥२९॥
जो गाव पती इक होवे, सो भी दुखिया दुख खोवे।
तुम तीन भुवन के स्वामी, दुख मेटो अतरजामी ॥३०॥
द्रोपदि को चीर बढायो, सीता प्रति कमल रचायो।
अजन से किये अकामी, दुख मेटचो अतरजामी ॥३१॥
मेरे अवगुन न चितारो, प्रभु अपनो विरद निहारो।
सब दोष रहित कर स्वामी, दुख मेटहु अतरजामी ॥३२॥
इन्द्रादिक पद नहि चाहू, विषयनि मे नाहिं लुभाऊ।
रागादिक दोष हरीजे परमातम निज पद दीजे ॥३३॥

दोहा—दोष रहित जिन देवजी, निजपद दीज्यो मोय।
सब जीवन के सुख बढे, आनन्द मगल होय ॥३४॥
अनुभव माणिक पारखी, जौहरि आप जिनन्द।
ये ही वर मोहि दीजिये, चरन शरन आनन्द ॥३५॥

बारह भावना

किसी बात को पुन पुन. चिन्तवन करते रहना अनुप्रेक्षा है। मोक्ष मार्ग मे वैराग्य की वृद्धि के अर्थ बारह प्रकार की अनुप्रेक्षाओ का कथन जैनागम मे प्रसिद्ध है, इन्हे बारह भावना भी कहते हैं। ये भावनाए ससार देह भोगो से वैराग्य उपजाने के लिए माता के समान हैं। छहढाला मे कहा है कि "वैराग्य उपावन माई, चिन्तो अनुप्रेक्षा भाई" जब तक जीवो की ससार मे प्रीति रहती है तब तक उनका ध्यान के सम्मुख होना कठिन है, इन भावनाओ को भाने से ध्यान मे रुचि होती है तथा ध्यान मे स्थिर होनेसे केवलज्ञान उत्पन्न होकर मोक्ष प्राप्त होता है ज्ञानार्णव मे कहा है कि—

विध्याति कषायाग्निर्विगलति रागो विलीयते ध्वान्तम् ।
उन्मिषति बोध दीपो हृदिपुंसां भावनाभ्यासात् ।।

अर्थात् इन द्वादश भावनाओ के निरन्तर अभ्यास करने से पुरुषो के हृदय मे कषाय रूप अग्नि बुझ जाती है, तथा पर द्रव्य के प्रति रागभाव गल जाता है और अज्ञान रूपी अन्धकार का विलय हो कर ज्ञान रूप दीप का प्रकाश होता है। इन भावनाओ का स्वरूप निम्न प्रकार है।

(१) अनित्य भावना—इन्द्रियो के विषय, धन, यौवन, जीवितव्य आदि जल के बुदबुदो के समान अस्थिर है, अनित्य हैं, देखते देखते ही नष्ट हो जाने वाले हैं इसप्रकार चिन्तवन करना।

(२) **अशरण भावना**—जैसे वन के एकान्त स्थान मे सिंह के द्वारा पकडे हुए मृग को कोई शरण नही होता है, उसी प्रकार इस ससारमे काल के गाल मे पडते हुए जीवो की कोई भी रक्षा करने वाला नही है इस प्रकार चिन्तवन करना।

(३) **संसार भावना**—यह जीव निरन्तर एक देह से दूसरी देह में जन्म लेकर चतुर्गति मे परिभ्रमण किया करता है और ससार दु खमय है इत्यादि ससार के स्वरूपका चिन्तवन करना।

(४) **एकत्व भावना**—जन्म, जरा, मरण, आदि के दु.ख मैं अकेला ही भोगता हू, कुटुम्बी आदिजन साथी नही हैं इत्यादि विचार करना।

(५) **अन्यत्व भावना**—शरीर कुटुम्बादिक से अपने स्वरूप को भिन्न चिन्तवन करना।

(६) **अशुचि भावना**—शरीर हाड, माम, मल मूत्र आदि से भरा हुआ महा अपवित्र है इस प्रकार अपने शरीर का चिन्तवन करना।

(७) **आस्रव भावना**—मिथ्यात्व, अविरति, कषाय आदि भावों से कर्मों का आस्रव होता है। आस्रव ही ससार मे परिभ्रमण का कारण और आत्मा के गुणो का घातक है, इसप्रकार आस्रव के स्वरूप का चिन्तवन करना।

(८) **संवर भावना**—आत्मा मे नवीन कर्मों का प्रवेश नही होने देना सो सवर है। संवर से ही जीवो का कल्याण होता है ऐसा विचार करना।

(९) **निर्जरा भावना**—सविपाक निर्जरा से आत्मा का कुछ भला नही होता किन्तु अविपाक निर्जरा से ही आत्माका कल्याण होता है इत्यादि निर्जरा के स्वरूप का चिन्तवन करना।

(१०) **लोक भावना**—लोक कितना बडा है, उसमे क्या २ रचनाएँ हैं, कौन कौन जाति के जीवो का कहा कहा निवास है इत्यादि लोक के स्वरूप का विचार करना।

(११) **बोधि दुर्लभ भावना**—रत्नत्रय रूप बोधि का प्राप्त होना अत्यन्त कठिन है इस प्रकार विचार करना।

(१२) **धर्म भावना**—धर्म है सो वस्तु का स्वभाव है, आत्मा का शुद्ध निर्मल स्वभाव ही अपना धर्म है तथा दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप व दश लक्षणरूप व अहिंसा रूप धर्म है इत्यादि धर्म के स्वरूप का वार बार विचार करना।

प० दौलतरामजी ने कहा है कि—

इन चिन्तत सम सुख जागे, जिमि ज्वलन पवन के लागे।
जब ही जिय आतम जाने, तब ही जिय शिव सुख ठाने ॥

अर्थात् इन बारह भावनाओ का चिन्तवन करने से समता रूपी सुख की जागृति होती है- जैसे हवा के लगने से अग्नि धधेक उठती है, जब यह जीव आत्मा के स्वरूप को जानता है तव ही मोक्ष रूपी सुख को प्राप्त करता है। अत: प्रत्येक मुमुक्षु को सवेग और वैराग्य के लिये इन भावनाओका चिन्तवन करना चाहिए।

बारह भावना

(कविवर भूधरदास कृत)

अनित्य—राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी अपनी वार ॥१॥

अशरण—दल बल देई देवता, मात पिता परिवार।
मरती बिरिया जीव को, कोऊ न राखन हार ॥२॥

ससार—दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णा वश धनवान।
कहू न सुख ससार में, सब जग देखो छान ॥३॥

एकत्व—आप अकेलो अवतरे, मरै अकेलो होय।
यू कबहू इस जीव को, साथी सगा न कोय ॥४॥

अन्यत्व—जहां देह अपनी नहीं, तहा न अपनों कोय।
घर सपति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन लोय ॥५॥

अशुचि—दिपै चाम चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह ।
भीतर या सम जगत में, अवर नहीं घिन गेह ॥६॥

आस्रव—मोह नींद के जोर, जगवासी घूमैं सदा ।
कर्म चोर चहुँ ओर, सरवस लूटैं सुध नहीं ॥७॥

संवर—सतगुरु देय जगाय मोह नींद जब उपशमै ।
तब कछु बनहि उपाय, कर्म चोर आवत रुकैं ॥८॥

निर्जरा—ज्ञान दीप तप तेल भर घर शोधै भ्रम छोर ।
या विधि बिन निकसैं नहीं, पैठे पूरब चोर ॥९॥
पंच महाव्रत संचरन, समिति पंच परकार ।
प्रबल पंच इन्द्रिय विजय, धार निर्जरा सार ॥१०॥

लोक—चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान
तामें जीव अनादि तैं, भरमत हैं बिन ज्ञान ॥११॥

बोधिदुर्लभ—धन कन कंचन राज सुख, सबहि सुलभ कर जान ।
दुर्लभ है संसार में, एक जथारथ ज्ञान ॥१२॥

धर्म—जांचे सुरतरु देय सुख, चिन्तत चिन्ता रैन ।
बिन जांचे बिन चिन्तये, धर्म सकल सुख देन ॥१३॥

हरिश चन्द्र ठोलिया
15, [illegible]
[illegible]

बारह भावना

(श्री भगतराय कृत)

दोहा—वन्दूं श्री अरहन्त-पद, वीतराग विज्ञान।
वरणू बारह भावना, जग जीवन हित जान।१।

विष्णु पद छंद—कहां गये चक्री जिन जीता, भरत खड सारा।
कहा गये वह रामरु लछमन, जिन रावण मारा।
कहाँ कृष्ण रुक्मिणी सतभामा, अरु सपति सगरी।
कहा गये वह रंग महल अरु, सुवरन की नगरी।२।

नही रहे वह लोभी कौरव, जूझ मरे रन मे।
गये राज तज पांडव वन को, अगनि लगी तन मे।
मोह नीद से उठ रे चेतन तुझे जगावन को।
हो दयाल उपदेश करें गुरु, बारह भावन को।३।

अनित्य भा०—सूरज चांद छिपे निकले, ऋतु फिर फिर कर आवे।
प्यारी आयू ऐसी बीते, पता नही पावे।
पर्वत पतित नदी सरिता जल, बह कर नहि हटता।
स्वांस चलत यो घटे काठ ज्यो, आरे सो कटता।४।

ओस बूंद ज्यो गले धूप मे, वा अंजुलि पानी।
छिन छिन यौवन छीन होत है, क्या समझे प्रानी।
इन्द्र जाल आकाश नगर सम, जग सम्पति सारी।
अथिर रूप ससार विचारो, सब नर अरु नारी।५।

अशरण भा०–काल सिंह ने मृग चेतन को घेरा भव वन मे ।
नही बचावनहारा कोई, यो समझो मन मे ।
मन्त्र यन्त्र सेना धन सम्पति, राज पाट छूटे ।
वश नहि चलता काल लुटेरा, काय नगरि लूटे ।६।
चक्र रतन हलधर सा भाई, काम नही आया ।
एक तीर के लगत कृष्ण की, विनश गई काया ।
देव धर्म गुरु शरण जगत मे, और नही कोई ।
भ्रम से फिरे भटकता चेतन, यू ही उमर खोई ।७।

ससार भा०–जनम मरन अरु जरा रोग से, सदा दुखी रहता ।
द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव भव, परिवर्तन सहता ।
छेदन भेदन नरक पशू गति, वध बन्धन सहना ।
राग उदय से दुख सुरगति मे, कहा सुखी रहना ।८।
भोगि पुण्य फल हो इक इन्द्री, क्या इसमे लाली ।
कुतवाली दिन चार वही फिर, खुरपा अरु जाली ।
मानुष जन्म अनेक विपतिमय, कही न सुख देखा ।
पचम गति सुख मिले शुभाशुभ का मेटो लेखा ।९।

एकत्व भा०–जन्मे मरे अकेला चेतन, सुख दुख का भोगी ।
और किसी का क्या इक दिन यह देह जुदी होगी ।
कमला चलत न पैड़ जाय, मरघट तक परिवारा ।
अपने अपने सुखको रोवे, पिता-पुत्र दारा ।१०।
ज्यो मेले में पंथी जन मिलि नेह फिरे धरते ।
ज्यो तरुवर पै रैन बसेरा पछी आ करते ।।

कोस कोई दो कोस कोई उड फिर थक थक हारे ।
जाय अकेला हस सग मे, कोई न पर मारे ।११।

अन्यत्व भा०—मोह रूप मृग तृष्णा जगमे, मिथ्या जल चमके ।
मृग चेतन नित भ्रम मे उड उठ, दौडे थक थक के ।
जल नहि पावै प्राण गमावे, भटक भटक मरता ।
वस्तु पराई मानै अपनी; भेद नहीं करता ।१२।
तू चेतन अरु देह अचेतन, यह जड तू ज्ञानी ।
मिले अनादि यतन ते बिछुडे ज्यो पय अरु पानी ।
रूप तुम्हारा सब सों न्यारा, भेद ज्ञान करना ।
जो लो पौरुष थके न तो लों, उद्यम सो चरना ।१३।

अशुचि भा•—तू नित पोखे यह सूखे ज्यो धोवें त्यों मैली ।
निश दिन करे उपाय देह का, रोग दशा फैली ।
माता पिता रज वीरज मिल कर बनी देह तेरी ।
मांस हाड नश लहू राध की, प्रगट व्याधि घेरी ।१४।
काना पौंडा पडा हाथ यह चूसे तो रोवे ।
फले अनन्त जु धर्म ध्यान की भूमि विषै बोवे ।
केसर चन्दन पुष्प सुगन्धित, वस्तु देख सारी ।
देह परसते होय, अपावन, निश दिन मल जारी ।१५।

आस्रव भा•—ज्यों सर जल आवत मोरी त्यो, आस्रव कर्मन को ।
दर्वित जीव प्रदेश गहै जब पुद्गल भरमन को ।
भावित आस्रव भाव शुभाशुभ निशदिन चेतन को ।
पाप पुण्य के दोनों करता कारण बन्धन को ।१६।

पन मिथ्यात योग पन्द्रह द्वादश अविरत जानो।
पचरुवीस कषाय मिले सब सत्तावन मानो।
मोह भाव की ममता टारे, पर परिणति खोते।
करे मोख का यतन निरास्रव, ज्ञानी जन होते।१७।

संवर भा०—ज्यों मोरी में डाट लगावे, सब जल रुक जाता।
त्यों आस्रव को रोकें संवर क्यों नहिं मन लाता।
पंच महाव्रत समिति गुप्ति कर वचन काय मन को।
दश विध धर्म परीषह बाइस, बारह भावन को।१८।
यह सब भाव सतावन मिलकर आस्रव को खोते।
सुपन दशा से जागो चेतन कहां पड़े सोते।
भाव शुभाशुभ रहित शुद्ध भावन संवर पावै।
डाट लगत यह नाव पडी मझधार पार जावै।१९।

निर्जरा भा०—ज्यों सरवर जल रुका सूखता तपन पड़ै भारी।
संवर रोके कर्म निर्जरा ह्वै सोखन हारी।
उदय भोग सविपाक समय, पक जाय आम डाली।
दूजी है अविपाक पकावै, पाल विषै माली।२०।
पहली सबके होय नहीं कुछ सरै काम तेरा।
दूजी करै जु उद्यम करकै, मिटै जगत फेरा।
संवर सहित करो तप प्रानी, मिलै मुक्ति राणी।
इस दुलहिन की यही सहेली, जानैं सब ज्ञानी।२१।

लोक भा०—लोक अलोक अकाश माहि थिर निराधार जानो।
पुरुष रूप कर कटी भये षट् द्रव्य न सो मानो।

इसका कोई न करता हरता, अमिट अनादी है ।
जीव रु पुद्गल नाचे यामें कर्म उपाधी है ।२२।
पाप पुण्य सो जीव जगत मे नित सुख दुख भरता ।
अपनी करनी आप भरै शिर औरन के धरता ।
मोह कर्म को नाश मेटकर सब जग की आसा ।
निज पद मे थिर होय लोक के शीश करो वासा ।२३।

बोधिदुर्लभ भा०–दुर्लभ है निगोद से थावर, अरु त्रस गति पानी ।
नर काया को सुरपति तरसे सो दुर्लभ प्राणी ।
उत्तम देश सुसगति दुर्लभ, श्रावक कुल पाना ।
दुर्लभ सम्यक् दुर्लभ सयम पचम गुण ठाना ।२४।
दुर्लभ रत्नत्रय आराधन, दीक्षा का धरना ।
दुर्लभ मुनिवर को व्रत पालन शुद्ध भाव करना ।
दुर्लभ तें दुर्लभ है चेतन, बोधि-ज्ञान पावे ।
पाकर केवलज्ञान नही फिर इस भव मे आवे ।२५।

धर्म भा०–एकान्तवाद के धारी जगमे दर्शन बहुतेरे ।
कल्पित नाना युक्ति बनाकर ज्ञान हरे मेरे ।
हो सुछन्द सब पाप करे सिर करता के लावे ।
कोई छिनक कोई करता से जगमे भटकावे ।२६।
वीतराग सर्वज्ञ दोष बिन श्री जिनकी वानी ।
सप्त-तत्व का वर्णन जामे सब को सुख दानी ।
इनका चितवन बार बार कर श्रद्धा उर धरना ।
"मगत" इसी जतन ते इक दिन भवसागर तरना ।२७।

बारह भावना

(बुधजन कृत)

गीता छन्द—जेती जगत मे वस्तु तेती अथिर परिणमती सदा ।
परणमन राखन नाहि समरथ इन्द्र चक्री मुनि कदा ।
सुत नारि यौवन और तन धन जानि दामिनि दमक सा ।
ममता न कीजे धारि समता मानि जल मे नमक सा ।१।
चेतन अचेतन सब परिग्रह हुआ अपनी थिति लहैं ।
सो रहैं आप करार माफिक अधिक राखे ना रहैं ।
अब शरण काकी लेयगा जब इन्द्र नाही रहत है ।
शरण तो इक धर्म आतम जाहि मुनि जन गहत हैं ।२।
सुर नर नरक पशु सकल हेरे कर्म चेरे बन रहे ।
सुख शासता नहि भासता सब विपति मे अति सन रहे ।
दुख मानसी तो देवगति में नारकी दुख ही भरै ।
तिर्यंच मनुज वियोग रोगी शोक सकट मैं जरै ।३।
क्यो भूलता शठ फूलता है देख परिग्रर थोक को ।
लाया कहा ले जायगा क्या फौज भूषण रोक को ।
जनमत मरत तुझ एकले को काल केता हो गया ।
संग और नाही लगे तेरे सीख मेरी सुन भया ।४।
इन्द्रीन तै जाना न जावै तू चिदानद अलक्ष है ।
स्वसवेदन करत अनुभव होत तब प्रत्यक्ष है ।
तन अन्य जड जानो सरूपी तू अरूपी सत्य है ।
कर भेदज्ञान सो ध्यान धर निज और बात असत्य है ।५।

क्या देख राचा फिरै नाचा रूप सुन्दर तन लहा ।
मल मूत्र भाडा भरा गाढा तू न जानै भ्रम गहा ।
क्यो सूग नाही लेत आतुर क्यो न चातुरता धरै ।
तु हि काल गटकै नाहि अटकै छोड तुझको गिर परै ।६।
कोई खरा कोई बुरा नहि, वस्तु विविध स्वभाव है ।
तू वृथा विकलप ठान उर मैं करत राग उपाव है ।
यू भाव आस्रव बनत तू ही द्रव्य आस्रव सुन कथा ।
तुझ हेतु से पुद्गल करम न निमित्त हो देते व्यथा ।७।
तन भोग जगत सरूप लख डर भविक गुर शरणा लिया ।
सुन धर्म धारा भर्म गारा हर्षि रुचि सन्मुख भया ।
इन्द्री अनिन्द्री दावि लीनी त्रस रु थावर वध तजा ।
तब कर्म आस्रव द्वार रोकै ध्यान निज मैं जा सजा ।८।
तज शल्य तीनो वरत लीनो बाह्यभ्यतर तप तपा ।
उपसर्ग सुर नर जड पशू कृत सहा निज आतम जपा ।
तब कर्म रस विन हो न लागे द्रव्य भावन निर्जरा ।
सब कर्म हरकै मोक्ष वरकै रहत चेतन ऊजरा ।९।
विच लोकनता लोक माही लोक मे सब द्रव भरा ।
सब भिन्न २ अनादि रचना निमित कारण की धरा ।
जिनदेव भाषा तिन प्रकाशा भर्म नाशा सुन गिरा ।
सुर मनुष तिर्यंक् नारकी हुइ ऊर्ध्व मध्य अधो धरा ।१०।
अनन्तकाल निगोद अटका निकस थावर तन धरा ।
भू वारि तेज बयार ह्वै कै बेइन्द्रिय त्रस अवतरा ।

फिर हो तिइन्द्री वा चौइन्द्री पचेन्द्री मन विन बना ।
मन युत मनुष गति हो न दुर्लभ ज्ञान अति दुर्लभ घना ।११।
जियन्हान धोना तीर्थ जाना धर्म नाही जप जपा ।
तन नग्न रहना धर्म नाही धर्म नाही तप तपा ।
वर धर्म निज आतम स्वभावी ताहि बिन सब निष्फला ।
बुधजन धरम निजधार लीना तिनहिं कीना सब भला ।१२।

दोहा—अथिराशरण ससार है, एकत्व अन्यत्वहि जान ।
अशुचि आस्रव सवरा, निर्जर लोक बखान ।१३।।
वोधरु दुर्लभ धर्म ये, बारह भावन जान ।
इनको भावै जो सदा, क्यो न लहै निर्वान ।।१४।।

बारह भावना

(जयचदजी कृत)

—❀ दोहा ❀—

द्रव्य रूप करि सर्व थिर, परजय थिर है कौन ।
द्रव्य दृष्टि आपा लखो, पर्जय नय करि गौन ।।१।।
शुद्धातम अरु पच गुरु, जग मे सरनो दोय ।
मोह उदय जिय के वृथा, आन कल्पना होय ।।२।।
परद्रव्यन तै प्रीति जो, है ससार अबोध ।
ताको फल गति चार मे, भ्रमण कह्यो श्रुत शोध ।।३।।

परमारथ तैं आतमा, एक रूप ही जोय ।
कर्म निमित विकलप घने, तिन नासे शिव होय ।।४।।
अपने अपने सत्व कू, सर्व वस्तु विलसाय ।
ऐसे चितवे जीव तब, पर ते ममत न थाय ।।५।।
निर्मल अपनी आतमा, देह अपावन गेह ।
जानि भव्य निज भाव को, या सो तजो सनेह ।।६।।
आतम केवलज्ञान मय, निश्चय दृष्टि निहार ।
सब विभाव परिणाम मय, आस्रव भाव विडार ।।७।।
निज स्वरूप मे लीनता, निश्चय सवर जानि ।
समिति गुप्ति सजम धरम, धरै पाप की हानि ।।८।।
सवर मय है आतमा, पूर्व कर्म झड जाय ।
निज स्वरूप को पाय कर, लोक शिखर जब थाय ।।९।।
लोक स्वरूप विचारि कैं, आतम रूप निहारि ।
परमारथ व्यवहार मुणि, मिथ्याभाव निवारि ।।१०।।
बोधि आपका भाव है, निश्चय दुर्लभ नाहिं ।
भव मे प्रापति कठिन है, यह व्यवहार कहाहि ।।११।।
दर्श ज्ञानमय चेतना, आतम धर्म बखानि ।
दया क्षमादिक रतनत्रय, या मे गर्भित जानि ।।१२।।

बारह भावना

(श्री भगौतीदास कृत)

पच परम पद वदन करो । मन वच भाव सहित उर धरो ।
बारह भावन पावन जान । भाऊ आतम गुण पहिचान ।१।

थिर नहिं दीखहिं नैननि वस्त । देहादिक अरु रूप समस्त ।
थिर विन नेह कौन सो करो । अथिर देख समता परिहरो ।२।

असरन तोहि सरन नहिं कोय । तीन लोक महिं दृग धर जोय ।
कोउ न तेरो राखन हार । कर्मन वस चेतन निरधार ।३।

अरु ससार भावना एहु । पर द्रव्यन सो कीजे नेह ।
तू चेतन वे जड सरवग । ताते तजहु परायो सग ।४।

एक जीव तू आप त्रिकाल । ऊरध मध्य भवन पाताल ।
दूजो कोउ न तेरी साथ । सदा अकेलो फिरहि अनाथ ।५।

भिन्न सदा पुद्गल तै रहे । भ्रम बुद्धिते जडता गहे ।
वे रूपी पुद्गल के खध । तू चिन्मूरत सदा अबध ।६।

अशुचि देख देहादिक अग । कौन कुवस्तु लगी तो सग ।
अस्थी मास रुधिर गद गेह । मल मूतन लखि तजहु सनेह ।७।

आस्रव पर सो कीजे प्रीत । ताते बध बढहिं विपरीत ।
पुद्गल तोहि अपनयो नाहिं । तू चेतन वे जड सब आहि ।८।

सवर पर को रोकन भाव । सुख होवे को यही उपाव ।
आवे नही नये जहा कर्म । पिछले रुकि प्रगटे निजधर्म ।९।

थिति पूरी ह्वै खिर २ जाहि । निर्जर भाव अधिक अधिकाहि ।
निर्मल होय चिदानन्द आप । मिटै सहज परसग मिलाप ।१०।
लोक माहि तेरो कछु नाहिं । लोक आन तुम आन लखाहि ।
वह षट् द्रव्यन को सब धाम।। तू चिनमूरति आतमराम ।११।
दुर्लभ परद्रव्यनि को भाव । सो तोहि दुर्लभ है सुनिराव ।
जो तेरो है ज्ञान अनन्त । सो नहि दुर्लभ सुनो महन्त ।१२।
धर्मसु आप स्वभाव हि जान । आप स्वभाव धर्म सोई मान ।
जब वह धर्म प्रगट तोहि होय । तब परमातम पद लखि सोय ।१३।
ये ही बारह भावन सार । तीर्थंकर भावहि निरधार ।
ह्वै वैराग महाव्रत लेहि । तव भव भ्रमन जलाजुलि देहिं ।१४।
भैया भावहु भाव अनूप । भावत होहु चरित शिवभूप ।
सुख अनन्त विलसहु निशदीस । इम भाख्यो स्वामी जगदीस ।१५।

वैराग्य भावना

दोहा—बीज राख फल भोगवे, ज्यों किसान जग माँहि ।
त्यो चक्री नृप सुख करे, धर्म विसारे नाहि ।१।

(योगीरासा व नरेन्द्र छन्द)

इस विधि राज करे नर नायक भोगे पुण्य विशालो ।
सुख सागर मे रमत निरन्तर जातन जानो कालो ।

एक दिवस शुभ करम सयोगे क्षेमकर मुनि वन्दे ।
देखे श्रीगुरु के पद पकज लोचन अलि आनन्दे ।२।
तीन प्रदक्षिण दे सिरनायो कर पूजा थुति कीनी ।
साधु समीप विनय कर वैठ्यो, चरणन मे दिठि दीनी ॥
गुरु उपदेश्यो धर्म शिरोमणि सुण राजा वैरागे ।
राज रमा वनितादिक जे रस ते रस बेरस लागे ॥३॥
मुनि सूरज कथनी किरणावलि लगत भरम वुधि भागी ।
भव तन भोग स्वरूप विचारयो परम धरम अनुरागी ।
इह ससार महावन भीतर भ्रमते और न आवे ।
जामन मरन जरा दौ दाझै जीव महा दुख पावे ।४।
कबहू जाय नरक थिति भुजे, छेदन भेदन भारी ।
कबहू पशु पर जाय धरें तह वघ बधन भयकारी ।
सुरगति मे पर सपति देखे, राग उदय दुख होई ।
मानुष योनि अनेक विपतिमय सर्व सुखी नहि कोई ।५।
कोई इष्ट वियोगी विलखे, कोई अनिष्ट सयोगी ।
कोई दीन दरिद्री विगुचे, कोई तन के रोगी ।
किसही घर कलिहारी नारी कै बेरी सम भाई ।
किसही के दुख बाहर दीखे, किस ही उर दुचिताई ।६।
कोई पुत्र विना नित झूरे, होय मरे तब रोवे ।
खोटी संतति सो दुख उपजे, क्यो प्रानी सुख सोवे ।
पुण्य उदय जिनके तिनके भी, नाहिं सदा सुख साता ।
यह जगवास जथारथ देखे, सब दीखें दुख दाता ।७।

जो ससार विपे सुख होता तीर्थंकर क्यो त्यागे ।
काहे को शिव साधन करते, सजम सो अनुरागे ।
देह अपावन अथिर घिनावन यामे सार न कोई ।
सागर के जल सो शुचि कीजे तो भी शुद्ध न होई ।८।

सात कुधात भरी मल मूरत चाम लपेटी सोहे ।
अतर देखत या सम जग मे, अवर अपावन को है ।
नव मल द्वार स्रवे निशि वासर नाम लिये घिन आवे ।
व्याधि उपाधि अनेक जहा तह कौन सुधी सुख पावे ।६।

पोषत तो दुख दोष करे अति, सोपत सुख उपजावे ।
दुर्जन देह स्वभाव बराबर, मूरख प्रीति बढावे ।
राचन जोग स्वरूप न याको विचरन जोग सही है ।
यह तन पाय महा तप कीजे यामे सार यही है ।१०।

भोग बुरे भव रोग बढावे वैरी हैं जग जीके ।
वेरस होय विपाक समय अति सेवत लागे नीके ।
वज्र अगनि विष से विषधर से ये अधिके दुखदाई ।
धर्म रतन के चोर चपल अति दुर्गति पथ सहाई ।११।

मोह उदय यह जीव अज्ञानी, भोग भले कर जाने ।
ज्यों कोई जन खाय धतूरो सो सब कचन माने ।
ज्यो ज्यो भोग सजोग मनोहर मनवाछित जन पावे ।
तृष्णा नागिन त्यो त्यो डके लहर जहर की आवे ।१२।
मैं चक्री पद पाय निरन्तर, भोगे भोग घनेरे ।
तो भी तनक भये नहिं पूरन, भोग मनोरथ मेरे ।

राज समाज महा अघ कारन, वैर बढावन हारा ।
वेश्या सम लछमी अति चचल याका कोन पतियारा ।१३।

मोह महा रिपु वैर विचार्यो, जग जिय सकट डारे ।
घर काराग्रह वनिता वेडी, परिजन जन रखवारे ।
सम्यक् दर्शन ज्ञान चरण तप, ये जिय के हितकारी ।
ये ही सार असार और सब, यह चक्री चितधारी ।१४।

छोडे चौदह रतन नवो निधि, अरु छोडे सग साथी ।
कोडि अठारह घोडे छोड़े चौरासी लख हाथी ।
इत्यादिक सम्पति बहुतेरी जीरण तृण सम त्यागी ।
नीति विचार नियोगी सुत को राज दियो बड भागी ।१५।

होय निशल्य अनेक नृपति सग, भूपण वसन उतारे ।
श्रीगुरु चरण धरी जिन मुद्रा पच महाव्रत धारे ।
धनि यह समझ सुबुद्धि जगोत्तम, धनि यह धीरज धारी ।
ऐसी सपति छोड बसे बन तिन पद धोक हमारी ।१६।

दोहा—परिग्रह पोट उतार सब, लीनो चारित पथ ।
निज स्वभाव मे थिर भये, वज्रनाभि निरग्रन्थ ।१७।

हरिश चन्द्र ढोलिया
15, नवजीवन उपवन,
मोती डूगरी रोड, जयपुर-4

मेरी भावना

(युग वीर)

जिसने रागद्वेप कामादिक जीते सव जग जान लिया ।
सव जीवो को मोक्ष मार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया ।
बुद्ध, वीर जिन, हरि हर ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो ।
भक्ति भाव से प्रेरित हो यह, चित्त उसी मे लीन रहो ।१।

विषयो की आशा नहि जिनके, साम्यभाव धन रखते हैं ।
निज पर के हित साधन मे जो, निश दिन तत्पर रहते है ।
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं ।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुख समूह को हरते हैं ।२।

रहे सदा सत्सग उन्ही का, ध्यान उन्ही का नित्य रहे ।
उन ही जैसी चर्या मे यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे ।
नही सताऊ किसी जीव को, झूठ कभी नहि कहा करू ।
परधन वनिता पर न लुभाऊं, सतोषामृत पिया करू ।३।

अहकार का भाव न रक्खू, नही किसी पर क्रोध करू ।
देख दूसरो की बढती को, कभी न ईर्षा भाव धरू ।
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करू ।
बने जहा तक इस जीवन मे, औरो का उपकार करू ।४।

मैत्री भाव जगत मे मेरा, सब जीवो से नित्य रहे ।
दीन दुखी जीवो पर मेरे, उर से करुणा स्रोत बहे ।

दुर्जन क्रूर कुमार्ग रतो पर, क्षोभ नही मुझको आवे ।
साम्यभाव रक्खू मैं उन पर, ऐसी परिणति हो जावे ।५।
गुणी जनो को देख हृदय मे, मेरे प्रेम उमड आवे ।
बने जहा तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे ।।
होऊ नही कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे ।
गुण ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषो पर जावे ।६।

कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे ।
लाखो वर्षों तक जीऊ या, मृत्यु आज ही आ जावे ।
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे ।
तो भी न्याय मार्ग से मेरा, कभी न पद डिगने पावे ।७।

होकर सुख मे मग्न न फूले, दुख मे कभी न घबरावे ।
पर्वत नदी श्मसान भयानक, अटवी से नहि भय खावें ।
रहे अडोल अकम्प निरन्तर, यह मन दृढतर बन जावे ।
इष्ट वियोग अनिष्ट योग मे, सहन शीलता दिखलावे ।८।

सुखी रहे सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे ।
बैर पाप अभिमान छोड, जग नित्य नये मगल गावे ।
घर घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जावे ।
ज्ञान चरित उन्नत कर अपना, मनुज जन्म फल सब पावें ।९।

ईति भीति व्यापे नहि जग मे, वृष्टि समय पर हुआ करे ।
धर्म निष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे ।
रोग मरी दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्ति से जिया करे ।
परम अहिंसा धर्म जगत मे, फैल सर्व हित किया करे ।१०।

फैले प्रेम परस्पर जग मे, मोह दूर पर रहा करे।
अप्रिय कटुक कठोर शब्द नहिं, कोई मुख से कहा करे।
बन कर सब 'युगवीर' हृदय से, देशोन्नति रत रहा करे।
वस्तु स्वरूप विचार खुशी से, सब दुख सकट सहा करे।११।

निरन्तर चिन्तनीय भावना

प्रश्न—को मैं ? यहा कहा से आया ? और कौन थल जाता हू ?
कौन हितू ? मेरा मैं किसको सत हित पथ लगाता हू।
इन प्रश्नो का उत्तर जो नर सदा चिन्तवन करता है।
सो नर 'दीप' शीघ्र विधि क्षयकर शिवरमणी को वरता है।

उत्तर—मैं सत चित आनन्द रूप हू, ज्ञाता दृष्टा सिद्ध समान।
द्रव्य भाव नो कर्म बिना हू, अमूर्तिक निर्मल गुण खान।
यद्यपि द्रव्य शक्ति से हू इम, पै अनादि विधि बंध विधान।
लख चौरासी रग भूमि मे, नाचत पर मे आपा मान।
सद्गुरु देव धर्म विन जग में, हितू न कोइ किसीका जान।
पुत्र कलत्र मित्र गृह सम्पति, ये मम मोह कल्पना मान।
इम विचार निज रूप चितारै, पावे सम्यक बोधि महान।
पुनिकर नष्ट अष्ट विधि पावे शीघ्र "दीप" अविचल निर्वान।

समाधि भावना

दिन रात मेरे स्वामी, मैं भावना ये भाऊं ।
देहान्त के समय में, तुमको न भूल जाऊं ।। टेक ।।
शत्रु अगर कोई हो, सन्तुष्ट उनको कर दूं ।
समता का भाव धर कर, सबसे क्षमा कराऊं ।।१।।
त्यागूं आहार पानी, औषध विचार अवसर ।
टूटे नियम न कोई, दृढ़ता हृदय में लाऊं ।।२।।
जागें नहीं कषायें नहि वेदना सतावे ।
तुमसे ही लौ लगी हो, दुर्ध्यान को भगाऊँ ।।३।।
आतम स्वरूप अथवा, आराधना विचारूं ।
अरहन्त सिद्ध साधू, रटना यही लगाऊँ ।।४।।
धरमात्मा निकट हों, चरचा धर्म सुनावें ।
वो सावधान रक्खें, गाफिल न होने पाऊं ।।५।।
जीने की हो न वांछा, मरने की हो न ख्वाहिश ।
परिवार मित्र जन से मैं मोह को हटाऊं ।।६।।
भोगे जो भोग पहले, उनका न होवे सुमरन ।
मैं राज्य सम्पदा या पद इन्द्रका न चाहूं ।।७।।
रत्नत्रय का पालन हो अन्त में समाधि ।
शिवराम प्रार्थना यह जीवन सफल बनाऊं ।।८।।

श्री वज्रदन्त चक्रवर्ती का

बारह मासा

—मंगलाचरण—

वन्दू मैं जिनेंद्र परमानन्द के कंद जगवद विमलेन्द्र जड ताप हरणकू ।
इद्र धरणेंद्र गौतमादिक गणेंद्र जाहि सेवै रावरक भवसागर तरणकू ।
निर्बंध निर्द्वंद दीनवधु दयासिन्धु करे उपदेश परमारथ करण कू ।
गावे 'नयन सुखदास' वज्रदन्त बारह मास मेटो भगवन्त मेरे जन्मन
मरण कू ।

दोहा—वज्रदन्त चक्रेश की, कथा सुनो मन लाय ।
कर्म काट शिवपुर गये, बारह भावन भाय ।

सवैया—बैठे वज्रदन्तराय, अपनी सभा लगाय,
ताके पास बैठे राय बत्तीस हजार हैं ।
इन्द्र कैसे भोग सार रानी छयानवै हजार,
पुत्र एक सहस्र महान गुणगार हैं ।
जाके पुण्य प्रचण्ड से नये हैं बलवन्त शत्रु,
हाथ जोड मान छोड सेवे दरबार हैं ।
ऐसो काल पाय माली ल्यायो एक डाली तामे
देखो अलि अम्बुज मरण भयकार हैं ।

सवैया—अहो ! यह भोग महा पाप को सयोग देखो,
डाली मे कमल तामे भोरा प्राण हरे हैं ।

नासिका के हेतु भयो भोग मे अचेत सारी,
रैन के कलाप मे विलाप इन करे हैं ।
हम तो हैं पाचो ही के भोगी भये जोगी नाहिं,
विषय कषायन के जाल माहिं परे हैं ।
जो न अब हित करू जाने कौन गति परु,
सुतन बुला के यो वचन अनुसरे हैं ।

(चक्रवर्ती का वचन पुत्रो के प्रति)

सवैया—अहो ! सुत जग रीति देख के हमारी नीति,
भई है उदास वनोवास अनुसरेंगे ।
राज भार शीस धरो, परजा का हित करो,
हम कर्म शत्रुन की फौजन सू लरेंगे ।
सुनत वचन तब कहत कुमार सब,
हम तो उगाल को न अगीकार करेंगे ।
आप बुरो जान छोडो, हमे जग जाल बोडो,
तुमरे ही सग पच महाव्रत धरेंगे ।

(पिता वचन, असाढ मास—चौपाई)

सुत ! असाढ आयो पावस काल । शिर पर गर्जत यम विकराल ।
लेहु राज, सुख करहु विनीत । हम वन जाय बडन की रीति ।

गीता छन्द—जाय तपके हेतु वन कू, भोग तज सयम घरें ।
तज ग्रन्थ सब निर्ग्रन्थ हो, ससार सागर से तरें ।

ये ही हमारे मन बसी, तुम रहो धीरज धारके ।
कुल आपने की रीति चालो राजनीति विचार कै ॥

—चौपाई—

पिता राज तुम कीनो भौन । ताहि ग्रहण हम समरथ कौन ।
यह भौरा भव भोगन व्यथा । प्रगट करत कर ककन यथा ॥

गीता छन्द—यथा करका कागना, सम्मुख प्रगट नजरो परै ।
त्यो ही पिता भौरा निरख, भव भोग से मन थर हरै ।
तुमने तो वन के वास ही को सुख्य अगीकृत किया ।
तुमरी समझ सोइ समझ हमरी, हमैं नृपपद क्यो दिया ।

(श्रावण मास)

चौपाई—श्रावण पुत्र ! कठिन बनवास ।
जल थल शीत पवन के त्रास ।
जो नही पाले साधु आचार ।
तो मुनि भेष लजावें सार ।

गीता छन्द—लाजे श्री मुनि भेष तातें, देह का साधन करो ।
सम्यक्त्व युत व्रत पचमे तुम देशव्रत मनमे धरो ।
हिसा असत्य चोरी परिग्रह, अब्रह्मचर्य सु टार कें ।
कुल आपने की रीति चालो राजनीति विचार के ।

चौ०—पिता अङ्ग यह हमरौ नाहिं । भूख प्यास पुद्गल परछाहिं ।
पाय परीषह कबहु न भजे । धर सन्यास मरण तन तजे ।

गीता छन्द—सन्यास धर तन को तजैं, नहि डश मसकन सों डरै ।
रहे नग्न तन वन खड मे, जहाँ मेघ मूशल जल परै ।
तुम धन्य हो बड भाग तज के, राज तप उद्यम किया ।
तुमरी समझ सोइ समझ हमरी, हमैं नृप पद क्यो दिया ।

(भादव मास)

चौ०—भादो मे सुत उपजै रोग । आवै याद महल के भोग ।
जो प्रमाद वश आसन टलै । तौ न दया व्रत तुम सो पलै ।

गीता छन्द—जब दया व्रत नाही पलै, तब उपहास जग मे विस्तरै ।
अरहन्त अरु निर्ग्रन्थ की, कहो कौन फिर सरधा करै ।
तातै करो मुनि दान पूजा, राज काज सभाल कैं ।
कुल आपने की रीति चालो, राजनीति विचार कै ।

चौ०—हम तज भोग चलेंगे साथ । मिटे रोग भव भव के तात ।
समता मन्दिर मे पग धरै । अनुभव अमृत सेवन करै ।

गीता छन्द—करै अनुभव पान आतम ध्यान वीणा कर धरै ।
आलाप मेघ मलार सोऽह, सप्त भगी स्वर भरै ।
ध्रग ध्रग पखावज भोग से, सन्तोष मन मे कर लिया ।
तुमरी समझ सोइ समझ हमरी, हमे नृप पद क्यो दिया ।

(आसोज मास–चौपाई)

आसुज भोग तजे नहि जाय । भोगी जीवन को डस खाय ।
मोह लहर जिय की सुधि हरै । ग्यारह गुणथानक चढ गिरै ।

गीता छन्द—गिरे थानक ग्यारवे से आय मिथ्या भू परै ।
बिन भाव की थिरता जगत मे चतुरगति के दुख भरे ।
रहे द्रव्य लिंगी जगत मे बिन ज्ञान पौरुष हार कें ।
कुल आपने की रीति चालो, राजनीति विचार कें ।

चौ०—विषय विडार पिता तन कसै । गिरि कदर निर्जन वन वसै ।
महामन्त्र को लखि परभाव । भोग भुजग न घालै घाव ।

गीता छन्द—घालै न भोग भुजग तव क्यो मोह की लहरों चढै ।
परमाद तज परमात्मा परकाश जिन आगम पढै ।
फिर काल लब्धि-उद्योत-होय,
सु होय यो मन थिर किया ।
तुमरी समझ सोइ समझ हमरी,
हमे नृप पद क्यो दिया ।

(कार्तिक मास-चौपाई)

कार्तिक मे सुत-करे विहार । काटे ककर-चुभे अपार ।
मारै दुष्ट खेंच के तीर । फाटै उर थर-हरै शरीर ।

गीता छन्द—थर हरै सगरी देह अपने हाथ काढत नहिं बनै ।
नहि और काहू सें कहै तब देह की थिरता हनै ॥
कोई खेंच बाधे खम्भ से कोई खांय आत निकार कें ।
कुल आपने की रीति चालो राजनीति विचार कें ।

चौ०—पद पद पुण्य धरा मैं चलै । काटै पाप सकल दलमलै ।
छिमा ढाल तल धरै शरीर । विफल करै दुष्टन के तीर ।

गीता छन्द—कर दुष्ट जन के तीर निष्फल, दया कुंजर पर चढ़े ।
तुम संग समता खड्ग लेकर अष्ट करमन तें लड़े ।
धन धन्य यह दिन वार प्रभु,
तुम जोग का उद्यम किया ।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी,
हमें नृप पद क्यों दिया ।

(अगहन मास—चौपाई)

अगहन मुनि तटिनी तट रहे । ग्रीषम शैल शिखर दुख सहे ।
पुनि जब आवत पावस काल । रहे साधु जन वन-विकराल ।

गीता छन्द—रहे वन विकराल में जहां सिंह स्याल सतावहीं ।
कानों मे बिच्छू बिल करे, अरु व्याल तन लिपटावहीं ।
दें कष्ट प्रेत पिशाच आन, अगार पाथर डारि के ।
कुल आपने की रीति चालो, राजनीति विचार के ।

चौ०—हे प्रभु बहुत बार दुख सहे । बिना केवली जाय न कहे ।
शीत उष्ण नरकन के तातें । करत याद कम्पें सब गात ।

गीता छन्द—गात कम्पें नरक में लहें शीत उष्ण अथाह ही ।
जहां लाख जोजन लोह पिंड सु होय जल गल जाय ही ।
असि पत्र वन के दुख सहे पर,
वश स्ववश तप नहिं किया ।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी,
हमें नृप पद क्यों दिया ।

(पौष मास–चौपाई)

पौष अर्थ अरु लेय गयन्द । चौरासी लख लख सुखकन्द ।
कोडि अठारह घोडा लेहु । लाख कोडि हल चलत गिनेहु ।

गीता छन्द—लेहु हल लख कोडि षटखंड,
भूमि अरु नव निधि बडी ।
लेहु देश कोष विभूति हमरी,
राशि रतनन की पडी ।
घर देहु शिर पर छत्र तुमरे,
नगर घोष उचार कें ।
कुल आपने की रीति चालो,
राजनीति विचार कें ।

चौ०—अहो कृपा निधि तुम परसाद । भोगे भोग सु बेमर्याद ।
अब न भोग की हमको चाह । भोगन मे भूले शिवराह ।

गीता छन्द—राह भूले मुक्ति की बहु वार सुर गति सचरैं ।
जहाँ कल्प वृक्ष सुगध सुन्दर, अप्सरा मन को हरैं ।
जो उदधि पी नहिं भयो तिरपत,
ओस पी कै दिन जिया ।
तुमरी समझ सोइ समझ हमरी,
हमे नृप पद क्यो दिया ।

(माघ मास–चौपाई)

माघ सधै न सुरन तें सोय । भोग भूमियन तें नहिं होय ।
हर हरिःअरु प्रति हरि से वीर । सयम हेतु धरै नहिं धीर ।

गीता छन्द—सयमी धीरज धरैं नहिं टरैं रन मे युद्ध सू ।
जो शत्रु गण गजराज-कू दल मलैं पकर विरुद्ध कू ।
पुनि कोटि शिल मुद्गर समानी देय फेंक उपार कैं ।
कुल आपने की रीति चालो राजनीति विचार कैं ।

चौ०—बध योग उद्यम नहिं करैं । वह तो तात कर्म फल भरैं ।
बाधे पूरव भवगति जिसी । भुगतैं जीव जगत मे तिसी ।

गीता छन्द—जीव भुगतें कर्म फल कहो कौन विधि सयम धरैं ।
जिन बध जैसा बाधियो तैसाहि सुख दुख सो भरैं ।
यो जान सबको बंध मे, निर्बन्ध का उद्यम किया ।
तुमरी समझ सोइ समझ हमरी,
हमे नृप पद क्यो दिया ।

(फाल्गुन मास–चौपाई)

फागुन चालैं शीतल वाय । थर थर कम्पैं सब की काय ।
तप भव बध विदारन हार । त्यागे मूढ महाव्रत धार ।

गीता छन्द—धार परिग्रह व्रत विसारें, अग्नि चहु दिशि जा रही ।
करैं मूढ शीत व्यतीत दुर्गति गहे हाथ पसारही ।
सो होय प्रेत पिशाच भूतरु, ऊच शुभ गति टार कैं ।
कुल आपने की रीति चालो राजनीति विचार कैं ।

चौ०—हे मतिवन्त कहा तुम कही । प्रलय पवन की वेदन सही ।
धारी मच्छ कच्छ की काय । सहे दु.ख जल चर पर्याय ।

गीता छन्द—पाय पशु पर जाय पर वश रहे सीग बधाय के ।
जहा रोम रोम शरीर कपै मरे तन तडफाय के ।
फिर मुये चाम उचेर श्वान
सियाल मिल श्रोणित पिया ।
तुमरी समझ सोइ समझ हमरी,
हमे नृप पद क्यो दिया ।

(चैत्र मास—चौपाई)

चैत लता मदनोदय होय । ऋतु बसन्त मे फूले सोय ।
तिनकी इष्ट गन्ध के जोर । जागे काम महा बल फोर ।

गीता छन्द—फोर बल को काम जागै लेय मन पुरछीन ही ।
फिर ज्ञान परम निधान हर कैं करै तेरा तीन ही ।
इनके न उतके रह गये तब कुगति दोउ कर झार कै ।
कुल आपने की रीत चालो राजनीति विचार कै ।

चौ०—ऋतु बसन्त वन मे नहिं रहे । भूमि मशान परीषह सहै ।
जहा नहिं हरित काय अंकूर । उडत निरन्तर अहनिशि धूर ।

गीता छन्द—उडे वन की धूर निशि दिन, लगे काकर आय के ।
सुन शब्द प्रेत प्रचड के तब काम जाय पलाय कै ।
मत कहो अब और प्रभु भव—भोग मे मन कपिया ।
तुमरी समझ सोइ समझ हमरी,
हमे नृप पद क्यो दियो ।

(वैशाख मास–चौपाई)

मास बिसाख सुतन अरदास । चक्री मत उपजो विश्वास ।
अब बोलन की नाही ठौर । मैं कहु और पुत्र, कहैं और ।

गीता छन्द—और अब कछु मैं कहू नहिं रीति जग की कीजिये ।
इक बार हम से राज्य लेके चाहे जिसको दीजिये ।
पोता था इक षट् मास का अभिषेक कर राजा कियो ।
पितु सग सब जग जाल सेती,
निकस बन मारग लियो ।

चौ०—उठे वज्र दन्त चक्रेश । तीस सहस नृप तज अलवेश ।
एक हजार पुत्र बड भाग । साठ सहस सती जग त्याग ।

गीता छन्द—त्याग जग कू ये चले सब, भोग तज ममता हरी ।
समभाव कर तिहु लोक के जीवो से यो विनती करी ।
अहो जेते जीव जग मे क्षमा हम पर कीजियो ।
हम जैन दीक्षा लेत हैं तुम वैर सब तज दीजियो ।
वैर सबसे हम तजा अरहन्त का शरण लिया ।
श्री सिद्ध साहू की शरण सर्वज्ञ के मत चित दिया ।
यों भाष पिहितास्रव गुरुन ढिग जैन दीक्षा आदरी ।
कर लोंच तज के सोच सबने ध्यान मे दृढता धरी ।

(जेठ मास–चौपाई)

जेठ मास लू ताती चलै । सूखे सर कपि गण मद गलै ।
ग्रीषम काल शिखर के शीश । धरचो आतापन योग मुनीश ।

गीता छन्द—धरि योग आतापन सुगुरु ने, तव शुक्ल ध्यान लगाइयो।
तिहुं लोक भानु समान केवलज्ञान तिन प्रगटाइयो।
घन वज्रदन्त मुनीश जग तज कर्म के सन्मुख भये।
निज काज अरु पर काज करके, समय मे शिवपुर गये।

चौ०—सम्यक् स्वाद सु गुण आवार। भये निरजन निर आकार।
आवागमन जलाजलि दई। सव जीवन की शुभ गति भई।

गीता छन्द—भई शुभ गति सवन की,
जिन शरण जिनपति की लई।
पुरुपार्थ सिद्धयुपाय से,
परमार्थ की सिद्धि भई।
जो पढै बारह मास भावन,
भाय चित हुलसाय के।
तिनके हो मगल नित नये,
अरु विघन जाय पलायके।

—❀ दोहा ❀—

नित नित नव मगल वढे, पढे जो यह गुण माल।
सुर नर के सुख भोग कर, पावै मोक्ष रसाल।

दो हजार माहि तै तिहत्तर घटाय
अब विक्रम को सवत् विचार के धरत हू।
अगहन असित त्रयोदशी मृगांकवार
अर्द्ध निशामांहि ये पूरण करत हू।

इति श्री वज्रदन्त चक्रवर्ति को वृतन्त
रच के पवित्र नयन आनन्द भरत हू ।
ज्ञानवन्त करो शुद्ध जान मेरी बाल बुद्धि
दोष पै न रोष करो मैं पायन परत हू ।

(इति श्री नयन सुखदास कृतं
वज्रदन्त चक्रवर्ती को बारह मासा)

सिद्धि सोपान

(श्री जुगलकिशोरजी मुख्तार)

जिन वीरो ने कर्म प्रकृतियो, का सब मूलोच्छेद किया ।
पूर्ण तपश्चर्या के बल से, स्वात्म भाव को साध लिया ।
उन सिद्धो को सिद्धि अर्थ मैं, वन्दू अति सन्तुष्ट हुआ ।
उनके अनुपम गुणाकर्ष से, भक्ति भाव को प्राप्त हुआ ।१।
स्वात्म भाव की लब्धि सिद्धि है होती वह उन दोषो के ।
उच्छेदन से आच्छादक जो, ज्ञानादिक गुण वृन्दो के ।
योग्य साधनो की सुयुक्ति से, अग्नि प्रयोगादिक द्वारा ।
हेम शिला से जग मे जैसे, हेम किया जाता न्यारा ।२।

नहि अभाव मय सिद्धि इष्ट है, नहि निज गुण विनाशवाली ।
सत का कभी नाश नहि होता, रहता गुणी न गुण खाली ।
जिनकी ऐसी सिद्धि न उनका, तप विधान कुछ बनता है ।
आत्म नाश निज गुण विनाश का, कौन यत्न बुध करता है ।३।

अस्तु अनादि बद्ध आत्मा है, स्वकृत कर्म फल का भोगी ।
कर्म बन्ध फल भोग नाश से, होता मुक्ति रमा योगी ।
ज्ञाता द्रष्टा निज तनु परिमित, सकोचेतर धर्मा है ।
स्वगुण युक्त रहता है हर दम, ध्रौव्योत्पत्ति व्ययात्मा है ।४।

इस सिद्धान्त मान्यता के बिन, साध्य सिद्धि नहि बटती है ।
स्वात्मरूप की लब्धि न होती, नहि व्रत चर्या बनती है ।
बन्ध मोक्ष फल की कथनी सब, कथन मात्र रह जाती है ।
अन्त न आता भव भ्रमण का, सत्य शान्ति नहि मिलती है ।५।

जब वह आत्मा मोहादिक के, उपशमादि को पाकर के ।
बाहर मे गुरु उपदेशादिक, श्रेष्ठ निमित्त मिला करके ।
विमल सुदर्शन ज्ञान चरणमय, अपनी ज्योति जगाता है ।
उस सुशक्ति के प्रबल घात से, घाति चतुष्क नशाता है ।६।

तब वह भासमान होता स्थिर, अद्भुत परम सुगुण गण से ।
प्रकटित हुआ अचिन्त्य सार है, जिनका दुरित विनाशन से ।
केवलज्ञान सुदर्शन से अति, वीर्य प्रवर सुख समकित से ।
शेष लब्धि से भामडल से, चामरादि की सम्पत से ।७।

सबको सदा जानता लखता, युगपत व्याप्त सुतृप्त हुआ ।
घन अज्ञान मोह तम धुनता, सबका सब निःस्वेद हुआ ।
करता तृप्त सु वचनामृत से, सभाजनो को भी करना ।
ईश्वरता सब प्रजाजनों की, अन्य ज्योति फीकी करता ।८

आत्मा को आत्म स्वरूप से, आत्मा मे प्रतिक्षण ध्याता ।
हुआ सातिशय वह आत्मा यो, सत्य स्वयभू पद पाता ।
वीतराग अर्हत्परमेष्ठी, आप्त सार्व जिन कहलाता ।
पर ज्योति सर्वज्ञ कृती प्रभु, जीवन्मुक्त नाम पाता ।९।

शेष निगड सम अन्य प्रकृतिया, फिर छेदता हुआ सारी ।
आयु वेदनी नाम गोत्र है, मूल प्रकृतिया जो भारी ।
उन अनन्त दृग बोध वीर्य सुख, सहित शेष क्षायिक गुण से ।
अव्याबाध अगुरु लघु से भी, सूक्ष्मपना अवगाहन से ।१०।

शोभमान होता तैसे ही, अन्य गुणों के समुदय से ।
प्रभवित हुए जो उत्तरोत्तर, कर्म प्रकृति के सक्षय से ।
क्षण में उर्ध्वगमन स्वभाव से, शुद्ध कर्म मल हीन हुआ ।
जा बसता है अग्र धाम में, निरुपद्रव स्वाधीन हुआ ।११।

मूलोच्छेद हुआ कर्मों का, बन्ध उदय सत्ता न रही ।
अन्याकार ग्रहण का कारण, रहा न तब इससे कुछ ही ।
न्यून चरम तनु प्रतिमा के सम, रुचिराकृति ही रह जाता ।
और अमूर्तिक वह सिद्धात्मा, निर्विकार पद को पाता ।१२।

क्षुधा तृपा श्वासादि काम ज्वर, जरा मरण के दुखो का ।
इष्ट वियोग प्रमोह आपदादिक के भारी कष्टो का ।
जन्म हेतु जो उस भव के क्षय से उत्पन्न सिद्ध सुख का ।
कर सकता परिणाम कौन है, लेश नही जिसमे दुख का ।१३।

सिद्ध हुआ निज उपादान से खुद अतिशय को प्राप्त हुआ ।
वाधा रहित विशाल इन्द्रियो के विषयो से रिक्त हुआ ।
वढता और न घटता है जो, प्रतिपक्षी से रहित सदा ।
उपमा रहित अन्य द्रव्यो की, नही अपेक्षा जिसे कदा ।१४।

सुख उत्कृष्ट अमित शाश्वत वह, सर्व काल मे व्याप्त हुआ ।
निरवधि सार परम सुख इससे उस सुसिद्ध को प्राप्त हुआ ।
जो परमेश्वर परमात्मा औ देह विमुक्त कहा जाता ।
स्वात्मस्थित कृत कृत्य हुआ निज पूर्ण स्वार्थ को अपनाता ।१५।

कर्म नाश से उस सुसिद्ध के, क्षुधा तृषा का लेश नही ।
नाना रस युत अन्न पान का, अत प्रयोजन शेष नही ।
नही प्रयोजन गन्ध माल्य का अशुचि योग जब कही नहीं ।
नही काम मृदु शय्या का जब, निद्रादिक का नाम नही ।१६।

रोग बिना तत शमनी उत्तम, औषध जैसे व्यर्थ कही ।
तम बिन दृश्यमान होते सब, दीप शिखा ज्यो व्यर्थ कही ।
त्यो सासारिक विषय सौख्य का, सिद्ध हुए कुछ काम नही ।
वाधित विषम पराश्रित भगुर, वन्ध हेतु जो अदुख नही ।१७।

यो अनन्त ज्ञानादि गुणो की सम्पत से जो युक्त सदा ।
विविध सु नय तप सयम से हो, सिद्ध न भजते विकृति कदा ।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण से, तथा सिद्ध पद को पाते ।
पूर्ण यशस्वी हुए विश्व देवाधिदेव जो कहलाते ।१८।
आवागमन विमुक्त हुए जिनको करना कुछ शेष नही ।
आत्म लीन सब दोष हीन, जिनके विभाव का लेश नही ।
राग द्वेष भय मुक्त निरजन, अजर अमर पद के स्वामी ।
मगल भूत पूर्ण विकसित सत्, चिदानन्द जो निष्कामी ।१९।
ऐसे हुए अनन्त सिद्ध औ, वर्तमान हैं सप्रति जो ।
आगे होगे सकल जगत मे, विबुध जनो से सस्तुत जो ।
उन सबको नत मस्तक हो मैं, बन्दू तीनो काल सदा ।
तत्स्वरूप की शीघ्र प्राप्ति का, इच्छुक होकर सहित मुदा ।२०।
कारण उनका जो स्वरूप है, वही रूप सब अपना है ।
उस ही तरह सुविकसित होगा, इसमे लेश न कहना है ।
उनके चिन्तन वदन से, निज रूप सामने आता है ।
भूली निज निधि का दर्शन यो प्राप्ति प्रेम उपजाता है ।२१।
इससे सिद्ध भक्ति है सची, जननी सब कल्याणो की ।
श्रेयो मार्ग सुलभ करती बन, हेतु कुशल परिणामो की ।
कही सिद्धि सोपान इसी से, प्रौढ सुधी जन अपनाते ।
पूज्यपाद की सिद्ध भक्ति लख, युग मुमुक्षु अति हर्षाते ।२२।

आत्म विकास

(युग वीर)

अर्हन्तो सिद्धो को प्रणाम् , किया जिन्होने आत्म विकास ।
बाधक कारण दूर किये सब, होकर उनसे परम उदास ।
आत्म विकास साधना सब का, ध्येय बने जग मे सुखकार ।
मिटे अविद्या बढे सुश्रद्धा, दूर भगे सब पापाचार ।१।

साधन सामग्री का समुचित मेल मिले सिद्धि कर सार ।
अर्हत्सिद्धादर्श रहे नित सम्मुख तज रागादि विकार ।
काम क्रोध मद लोभ वृत्तिया, करती नित जीवन का ह्रास ।
समता तुला बिगडती जिससे, नही फटकता सुख निज पास ।२।

सुख के पीछे भटक रहा है, सारा जग होकर सभ्रान्त ।
पर न समझता सुख क्या कैसे, कहा मिले है बन अभ्रान्त ।
इसमे दौड धूप सब उसकी, मृग तृष्णा सम जाती व्यर्थ ।
आकुलता पल्ले पडती है, सध नही पाता कोई अर्थ ।३।

सुख चेतन सम आत्म सुगुण है, आकुलता चिन्ता से दूर ।
नही पराश्रित नहिं जडतामय, नहि जिसमे दुख का अकूर ।
आत्म द्रव्य से भिन्न जगत मे, नही कही सुख का लवलेश ।
आत्म विकास सधे सुख प्रकटे, अविनाशी अविचल अक्लेश ।४।

रागद्वेष की कल्लोले जब, उठे नही मन मे सविकार ।
आत्म तत्व का दर्शन हो तब, चिदानन्द मय गुण आगार ।

आत्म तत्व का दर्शन ज्यो ज्यो, स्थिर होता जाता अविकार ।
परपरिणति हटती जाती त्यो, आत्म विकास विघ्न कर्तार ।५।

पर परिणति हटने से होती, आत्म लीनता सुख अति पूर ।
आत्म लीनता ही दृढ होकर, करती सर्व मलिनता दूर ।
द्रव्य भाव मय कर्म कालिमा, औ विभाव परिणति तज्जन्य ।
यह है आत्म मलिनता इससे, मुक्त हुए वे ही सब धन्य ।६।
मुक्तो का ध्यानाराधन भी, आत्म विकास सहायक सार ।
बत्ती का दीपालिंगन ज्यो, करता उसको दीपाकार ।
भक्ति योग कहते है इसको, ज्ञान योग सज्ज्ञान अपार ।
कर्म योग सच्चरण रूप है, करते मिल सब मल अपहार ।७।

योगत्रय रत्नत्रय समझो, अग्नि रूप है मल क्षयकार ।
मल क्षय होकर आत्मा विकसे, यह विकास सिद्धान्त सुसार ।
अग्नि सुयोग यथा विध पा ज्यो, दृषद धरे हैं हेमाकार ।
योगत्रय सयोग पाय त्यो, जीवधरे हैं मुक्ताकार ।८।
मुक्त रूप परिणति विकास है, सब मल बन्धनादि से दूर ।
स्व स्वरूप उपलब्धि यही है, अनुपम सहज गुणो से पूर ।
निरवधि सुख दृग ज्ञान वीर्य है, अनुपम गुण स्वाभाविक सार ।
मोहावरण विघ्न दुरितो से, आच्छादित जो दोषाकार ।९।
योग्य साधनो की सुयुक्ति से इन दोषो का हो परिहार ।
आत्म विकास सधे सुख उपजे, अविनश्वर सुस्थिर दुखहार ।
अत भक्ति सह ज्ञान चरण का, योग मिलाकर बन युगवीर ।
कर्म कालिमा दूर भगा सब, निर्मल हो पहुचो शिव तीर ।१०।

समाधि मरण

(श्री द्यानतराय कृत)

गौतम स्वामी वन्दो नामी, मरण समाधि भला है ।
मै कब पाऊ निश दिन ध्याऊँ गाऊँ वचन कला है ।
देव धर्म गुरु प्रीति महा दृढ सात व्यसन नहिं जाने ।
त्यागि बाईस अभक्ष सयमी, बारह व्रत नित ठाने ।१।

चक्की उखरि चूलि बुहारो, पानी त्रस न विराधे ।
वनिज करे पर द्रव्य हरे नहिं, छहो करम इमि साधे ।
पूजा शास्त्र गुरुन की सेवा, सयम तप चहु दानी ।
पर उपकारी अल्प आहारी, सामायिक विधि ज्ञानी ।२।

जाप जपै तिहु योग धरे दृढ, तन की ममता टारे ।
अन्त समय वैराग्य सम्हारे, ध्यान समाधि विचारे ।
आग लगे अरु नाव डुबे जब धर्म विघन जब आवे ।
चार प्रकार आहार त्याग के, मन्त्र सु मन मे ध्यावे ।३।

रोग असाध्य जरा बहु देखे, कारण और निहारे ।
बात बडी है जो बनि आवे, भार भवन को डारे ।
जो न बने तो घर मे रह कर सबसो होय निराला ।
मात पिता सुत तिय को सोंपे, निज परिग्रह अहि काला ।४।

कछु चैत्यालय कछु श्रावक जन, कुछ दुखिया धन देई ।
क्षमा क्षमा सब ही सो कहि के मन की शल्य हनेई ।

शत्रुन सो मिल निज कर जोरे, मैं बहु कीनी बुराई ।
तुमसे प्रीतम को दुख दीने ते सब बकसो भाई ।५।
धन धरती जो मुख सो मागे सो सब दे सतोषे ।
छहो काय के प्राणी ऊपर, करुणा भाव विशेषे ।
ऊच नीच घर वैठ जगह इक, कुछ भोजन कुछ पयले ।
दूधा धारी क्रम क्रम तजि के, छाछ आहार गहे ले ।६।
छाछे त्यागि के पानी राखे, पानी तजि सथारा ।
भूमि माहि थिर आसन माडे, साधर्मी ढिग प्यारा ।
जब तुम जानो यह न जपे है, तब जिनवाणी पढिये ।
यो कहि मौन लियो सन्यासी, पच परम पद गहिये ।७।
चार आराधन मन मे ध्यावे, बारह भावन भावे ।
दश लक्षण मन धर्म विचारे, रत्नत्रय मन ल्यावे ।
पेतिस सोलह षट पन चारो, दुइ इक वरन विचारे ।
काया तेरी दुख की ढेरी, ज्ञान मई तू सारे ।८।
अजर अमर निज गुण सो पूरे, परमानन्द सुभावे ।
आनन्द कन्द चिदानन्द साहब, तीन जगत पति ध्यावे ।
क्षुधा तृषादिक होय परीषह, सहे भाव सम राखे ।
अतीचार पाचो सब त्यागे, ज्ञान सुधा रस चाखे ।९।
हाड मास सब सूखि जाय जब, धरम लीन तन त्यागे ।
अद्भुत पुण्य उपाय सुरग मे, सेज उठे ज्यो जागे ।
तहा ते आवे शिव पद पावे, विलसे सुक्ख अनन्तो ।
द्यानत यह गति होय हमारी, जैन धरम जयवन्तो ।१०।

सुख–शान्ति

(दीपचदजी कृत)

पढो वेद वेदान्त साख्य तुम परम ब्रह्म का ध्यान करो ।
या माला शुभ तिलक लगाकर सगुण मूर्ति का ध्यान धरो ।
रहो देश मे या विदेश मे चाहे जाओ जहा कही ।
क्या जीवन सुख पाया तुमने जो तन मे है शान्ति नही ।१।
पडित हो उपदेशक वन तुम लोगो को उपदेश करो ।
या वाणिज्य ग्रहस्थी करके द्रव्यो से निज गेह भरो ।
घर मे रहा सभी से मिल कर या निर्जन वन वीच कही ।
मानव जन्म वृथा ही जानो जो मन मे हो शान्ति नही ।२।
रहने को प्रासाद भले हो, जिनमे हो सब साज सजे ।
सोने को सेजे सुन्दर हो, चाहे सुन्दर वाद्य वजे ।
भूषण वसन सभी अच्छे हो, रहे नही त्रुटि एक कही ।
तो भी क्या जीवन सुख होता जो मन मे है शान्ति नही ।३।
सुख के सव सामान सजे हो बैठे हो ढिग वन्धु कई ।
नाच रही हो नटी पास मे ले ले करके तान नई ।
पडित गुणी प्रधानो से हो भरा हुआ दर्वार अभी ।
जो मन मे है शान्ति नही तो विष समान ये दृश्य सभी ।४।
धन जन से परिपूरित हो हम सेवक जन भी पास खडे ।
सब कुछ पढे लिखे अच्छे हो लोगो मे विख्यात बडे ।
मित्र बैठ कर पास प्रेम से किया करें आलाप सही ।
तो भी ये सब व्यर्थ जगत मे जो मन मे हो शान्ति नही ।५।

विद्या धन पाने पर तुम मे, अब न धनी मे रहा विभेद ।
पाकर पत्नी रत्न जगत मे पुत्र जन्म का रहा न खेद ।
माना सब कुछ पाया तुमने छाया है जग सुयश महान ।
किन्तु शान्ति सुख के आगे सब सुख को समझो धूल समान ।६।
बैठे रहो कुटी के भीतर या जगल के बीच खडे ।
या पर्वत की चोटी पर या रहो गुफा के मध्य पड़े ।
स्वजन हीन हो पास नही फिर सोने को भी एक दरी ।
तुमको है कुछ कष्ट नही जो मन मे हो सुख शान्ति भरी ।७।
बाहर से हम सुखी भले हो भीतर आग धधकती है ।
रोते हैं हो हो व्याकुल हम अग्नि तनिक नही घटती है ।
करो कोटि उपचार यार यह सकट क्या मिट सकता है ।
विना शान्ति सरिता मे नहाए ताप नही मिट सकता है ।८।
तज ईर्षा अभिमान क्रोध छल पर निन्दा से दूर रहो ।
रख जीवो पर दया किसी को कभी नही कटु वाक्य कहो ।
सबसे मिले रहो विनयी हो क्षमा शील सन्तोष गहो ।
तभी शान्ति सुख मिल सकता है जब तुम जी से उसे चहो ।९।
किसी अवस्था मे रहकर भी, सुख से समय बितावेंगे ।
करके यही प्रतिज्ञा दुख मे कभी नही घबरावेंगे ।
जग सीदन सोचें हम सब भी इन बातो को यदा कदा ।
जीवन धन्य तभी है भाई जब मन मे हो शान्ति सदा ।१०।

दोहा—नगर अरनि गिरि गुफा नदि, नहिं मठ महल मसान ।
दीप शांति सुख निज निकट, देखो रख निज ध्यान ।११।

सुख का सच्चा उपाय

जग के पदार्थ सारे, वर्ते इच्छानुकूल जो तेरी ।
तो तुझको सुख होवे, पर ऐसा हो नही सकता ।१।
क्यो कि परिणमन उनका, शाश्वत उनके अधीन ही रहता ।
जो निज अधीन चाहे वह व्याकुल व्यर्थ होता है ।२।
इससे उपाय सुख का सच्चा स्वाधीन वृत्ति है अपनी ।
रागद्वेष विहीना क्षरण मे सव दुख हरती जो ।३।

वैराग्य पचीसिका

(श्री भगवतीदासजी)

रागादिक दूषण तजे, वैरागी जिनदेव ।
मन वच शीश नवाय के, कीजे तिनकी सेव ।१।
जगत मूल यह राग है, मुक्ति मूल वैराग ।
मूल दुहुन को यह कह्यो, जाग सकै तो जाग ।२।
क्रोध मान माया धरत, लोभ सहित परिणाम ।
ये ही तेरे शत्रु हैं, समुझो आतम राम ।३।
इनही चारो शत्रु को जो जीते जग माहि ।
सो पावहि पथ मोक्ष को, या मे धोखो नाहि ।४।

जा लच्छी के काज तू, खोवत है निजधर्म ।
सो लच्छी सग ना चले, काहे भूलत भर्म ।५।
जा कुटुम्ब के हेत तू करत अनेक उपाय ।
सो कुटुम्ब अगनी लगा, तों को देत जराय ।६।
पोषत है जा देह को, जोग त्रिविधि के लाय ।
सो तोको छिन एक मे दगा देय खिर जाय ।७।
लच्छी साथ न अनुसरै, देह चले नहि सग ।
काढ काढ सुजनहि करै, देख जगत के रग ।८।
दुर्लभ दश दृष्टान्त सम, सो नरभव तुम पाय ।
विषय सुखन के कारने, सर्वस चले गमाय ।९।
जगहि फिरत कइ युग भये, सो कछु कियो विचार ।
चेतन अब तो चेतहू, नरभव लहि अतिसार ।१०।
ऐसें मति विभ्रम भई, विषयनि लागत धाय ।
कै दिन कै छिन कै घरी, यह सुख थिर ठहराय ।११।
पी तो सुधा स्वभाव की, जी तो कहू सुनाय ।
तू रीतो क्यो जातु है, वीतो नर भव जाय ।१२।
मिथ्या दृष्टि निकृष्ट अति, लखै न इष्ट अनिष्ट ।
भ्रष्ट करत है शिष्ट को, शुद्ध दृष्टि दे पिष्ट ।१३।
चेतन कर्म उपाधि तज, राग द्वेष को सग ।
ज्यो प्रगटे परमातमा, शिव सुख होय अभग ।१४।
ब्रह्म कहू तो मैं नही, क्षत्री हू पुनि नाहि ।
वैश्य शूद्र दोऊ नही, चिदानन्द हू, माहि ।१५।

जो देखै इहि नैन सो, सो सब विनस्यो जाय ।
तासो जो अपनो कहे, सो मूरख शिर राय ।१६।
पुद्गल को जो रूप है, उपजे विनसै सोय ।
जो अविनाशी आतमा, सो कछु और न होय ।१७।
देख अवस्था गर्भ की, कौन कौन दुख होहि ।
वहुरि मगन ससार मे, सौ लानत है तोहि ।१८।
अधो शीश ऊरध चरन, कौन अशुचि आहार ।
थोरे दिन की वात यह भूलि जात ससार ।१९।
अस्थि चर्म मल मूत्र मे, रैन दिना को वास ।
देखे दृष्टि घिनावनो, तऊ न होय उदास ।२०।
रोगादिक पीडित रहे महा कष्ट जो होय ।
तव हू मूरख जीव यह धर्म न चिन्तै कोय ।२१।
मरन समै विललात है कोऊ लेहु वचाय ।
जाने ज्यो त्यो जीजिये, जोर न कछू वसाय ।२२।
फिर नर भव मिलिवो नही, किये हु कोट उपाय ।
ताते वेगहि चेतहू अहो जगत के राय ।२३।
भैया की यह वीनती, चेतन चितहिं विचार ।
ज्ञान दर्श चारित्र मे, आपो लेहु निहार ।२४।
एक सात पचास को; सवत्सर सुखकार ।
पक्ष सुकल तिथि धर्म की, जै जै निशि पतिवार ।२५।

चेतन व काय का संवाद

चेतन–सोलह सिंगार विलेपन भूषण से निशि वासर तोहिं सभारे।
पुष्टि करी बहु भोजन पान दे, धर्मरु कर्म सबैहि विसारे।
सेये मिथ्यात अन्याय करे बहुते तुझ कारण जीव सहारे।
भक्ष गिन्यो न अभक्ष गिन्यो, अब तो चल सग तू काय हमारे।

काय-ये अनहोनी कहो क्या चेतन भग खाय के भये मतवारे।
सग गई न चलू अबहू लखि ये तो स्वभाव अनादि हमारे।
इन्द्र नरेन्द्र धनेन्द्रन के नहिं सग गई तुम कौन विचारे।
कोटि उपाय करो तुम चेतन, तो हू चलू नहिं सग तुम्हारे।

आलसी और उद्यमी का स्वरूप

चौ०—जो जिय मोह-नीद मे सोवे। ते आलसी निरुद्यमी होवे।
दृष्टि खोलि जे जगे प्रवीना। तिनि आलस तजि उद्यम कीना।

दोहा—बध वढा वे अघ ह्वै, ते आलसी अजान।
मुक्ति हेतु करणी करे, ते नर उद्यमवान।

गुरु शिष्य संवाद

गुरु—कुछ न वनाया कुछ न वनाया, कुछ न वनाया जी ।
अगले भव की खातिर तुमने कुछ न वनाया जी ।टेक।

शिष्य—हट्टी कट्टी देखो मैंने देह वनाई है ।
भूपरग वसन इत्र आदि से खूब सजाई है ।
गुरु—इसकी राख वनेगी यह तो कुछ न वनाया जी ।१।

शिष्य—कैसे कैसे ऊचे ऊचे महल वनाये हैं ।
अजव गजव के फर्नीचर से खूब सजाये है ।
गुरु—इन्हे त्यागना होगा यह तो कुछ न वनाया जी ।२।

शिष्य—वेश कीमती रत्नो का भडार वनाया है ।
चादी सोने का भी घर मे ढेर लगाया है ।
गुरु—मालिक और वनेंगे यह तो कुछ न वनाया जी ।३।

शिष्य—सारे पुर मे देखो, कैसी शान वनाई है ।
प्रमुख जनो मे इज्जत आलीशान वनाई है ।
गुरु—जीते जी का सव कुछ यह तो कुछ न वनाया जी ।४।

शिष्य—वडे वडे दुनिया के चन्दन काम वनाये हैं ।
मेधा के वल वड़े वड़े प्रोग्राम वनाये हैं ।
गुरु—विच मे पडे रहेगे यह तो कुछ न वनाया जी ।५।

ज्ञान और चारित्र की बातें

एक दिन एक ठौर मिले ज्ञान चारित सो, पूछी निज
बात कहाँ रावरो निवास है। बोले ज्ञान सत्य रूप
चिदानन्द नाम भूप, असख्यात परदेश ताके पुर वास है।
एक एक देश मे अनन्त गुण ग्राम लसे, तहा के वसैया हम
चरणो के दास हैं। तू हू चलि मेरे सग, दोहू मिलि
लूटे सुख, मेरे आख तेरे पाव बनो योग खास है।१।

वैराग्य कामना

कब गृहवास सो उदास होय वन सेऊ, वेऊ निज रूप
गति रोकू मन करी की। रहि हो अडोल एक आसन
अचल अग सहि हो परीषह शीत घाम मेघ झरी की।
सारग समाज खाज कबधो खुजे है आन, ध्यान दल ज़ोर जीतू
सेना मोह अरी की। एकल विहारी जथा जात लिग धारी कब
होऊ इच्छाचारी बलिहारी हो वा घरी की।१।
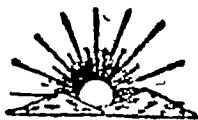
—: प्रार्थना :—

मुझे दो बल ऐसा भगवान ॥टेक॥

इन्द्रिय ठग अरु दुष्ट कषायें, काम क्रोध अभिमान ।
लूट रहे धन ज्ञान इन्हों का, मेटूं नाम निशान ॥मुझे॥१॥

कवच अहिंसा धारण करके, तोडूं ममता बान ।
पास जरा परमाद न आवे, दूर भेज दुर्ध्यान ॥मुझे॥२॥

कितना ही बल क्यों न दिखावें, कर्म उदय बलवान ।
शक्ति अनन्त प्रकट कर अपनी, जीतूं मोह महान ॥मुझे॥३॥

रागद्वेष का तोड़ गिरा दूं लेकर ज्ञान कृपाण ।
आतम कोष संभालूं अपना, रत्न गुण पवित्र ज्ञान ॥मुझे॥४॥

पाय स्वराज्य अनन्त अविनाशी, मुक्ति पुरी शिव धाम ।
होय सुखी विश्राम करूं नित, शांति सुधारस पान ॥मुझे॥५॥

वीर स्तुति

हमारी वीर हरो भव पीर । टेक ।

मै दुख-तपित दयामृत सर तुम, लख आयो तुम तीर ।

तुम परमेश मोख मग दर्शक, मोह दवानल नीर ।१।

तुम बिन हेत जगत उपकारी, शुद्ध चिदानन्द धीर ।

गनपति ज्ञान समुद्र न लघे, तुम गुण ज्ञान गहीर ।२।

याद नही मैं विपति सही जो, घर धर अमित शरीर ।

तुम गुण चिन्तत नशत तथा भय, ज्यो घन चलत समीर ।३।

कोटि वार की अरज यही है, मैं दुख सहू अधीर ।

हरहु वेदना फंद दौल को, कतर कर्म जंजीर ।४।

卐 卐 卐

—: वन्दना :—

तेरी महिमा को भगवान, नही गा सकता है इन्सान ।टेक।

तूने राग द्वेष को टाला, जिससे मिला तुझे उजियाला ।

तब तू बना पवित्र महान ।१।

झडा अखिल लोक का लेकर, दुर्लभ ज्ञान सुधा रस देकर ।

कितना किया विश्व कल्याण ।२।

तू है भव दुखियो का त्राता, आत्मिक सुखमय जीवन दाता ।

तेरा जग मे व्यापक ज्ञान ।३।

कर दे उर का दूर अधेरा, तुझको नमस्कार है मेरा ।

भगवत कर यह कृपा प्रदान ।४।

महावीर–सन्देश

(श्री युग वीर)

यही है महावीर सन्देश ।
विपुलाचल पर दिया गया जो प्रमुख धर्म उपदेश ।यही०।

सब जीवो को तुम अपनाओ, हर उनके दुख क्लेश ।
असद्भाव रक्खो न किसी से, हो अरि क्यो न विशेष ।यही०।१।

वैरी का उद्धार श्रेष्ठ है, कीजे सविधि विशेष ।
वैर छुटे उपजे मति जिससे, वही यत्न यत्नेश ।यही०।२।

घृणा पाप से हो पापी से, नही कभी लवलेश ।
भूल सुझा कर प्रेम मार्ग से, करो उसे पुण्येश ।यही०।३।

तज एकान्त कदाग्रह दुर्गुण, बनो उदार विशेष ।
रह प्रसन्न चित सदा करो तुम, मनन तत्व उपदेश ।यही०।४।

जीतो राग द्वेष भय इन्द्रिय, मोह कषाय अशेष ।
धरो धैर्य समचित्त रहो औ, सुख दुख में सविशेष ।यही०।५।

अहकार ममकार तजो जो अवनतिकार विशेष ।
तप सयम मे रत हो त्यागो, तृष्णा भाव अशेष ।यही०।६।

वीर उपासक बनो सत्य के, तज मिथ्याभि निवेश ।
विपदाओ से मत घबराओ, धरो न कोपावेश ।यही०।७।

सज्ञानी सदृष्टि बनो औ, तजो भाव सक्लेश ।
सदाचार पालो दृढ होकर, रहे प्रमाद न लेश ।यही०।८।

नरभव सुकुल जैन वृष नौका,
लहि निज क्यो भव जल डोवत हो ।हो०।३।

पुण्य पाप फल वात व्याधि वश,
छिन मे हसत छिनक रोवत हो ।

सयम सलिल लेय निज उरके,
कलिमल क्यो न "दौल" धोवत हो ।हो०।४।

(२)

रे मन तेरी को कुटेव यह,
करन विषय मे धावै है ।टेक।

इन ही के वश तू अनादि तें,
निज स्वरूप न लखावै है ।

पराधीन छिन छीन समाकुल,
दुरगति विपति चखावै है ।रे।१।

फरस विषय के कारन वारन,
गरत परत दुख पावै है ।

रसना इन्द्री वश झष जल मे,
कटक कठ छिदावै है ।रे।२।

गध लोल पकज मुद्रित मे,
अलि निज प्राण खपावै है ।

नयन विषय वश दीप शिखा मे,
अग पतग जरावै है ।रे।३।

करन विषय वश हिरन अरन मे,
खल कर प्रान लुभावै है।
"दौलत" तज इनको जिनको भज,
यह गुरु सीख सुनावै है।रे।४।

(३)

चिन्मूरत दृग्धारी की मोहि
रीति लगत है अटा पटी।टेक।
बाहरि नारकि कृत दुख भोगे,
अंतर सुख रस गटा गटी।
रमत अनेक सुरनि सग पै तिस,
परनति तै नित हटा हटी।चि०।१।
ज्ञान विराग शक्ति तै विधि फल,
भोगत पै विधि घटा घटी।
सदन निवासी तदपि उदासी,
तातें आस्रव छटा छटी।चि०।२।
जे भव हेतु अवुध के ते तस,
करत वध की झटा झटी।
नारक पशु तिय पट विकलत्रय,
प्रकृतिन की ह्वै कटाकटी।चि०।३।
सयम धर न सकै पै सयम,
धारन की उर चटा चटी।

तासु सुयश गुन की "दौलत" के,

लगी रहे नित रटा रटी ।चि०।४।

(४)

अरे जिया जग धोखे की टाटी ।अरे। ।टेक।

झूठा उद्यम लोक करत हैं,

जिसमे निश दिन घाटी ।अरे।१।

जान बूझ के अन्ध बने हैं,

आँखन बाधी पाटी ।अरे।२।

निकल जायेंगे प्राण छिनक मे,

पडी रहेगी माटी ।अरे।३।

दौलतराम समझ मन अपने,

दिल की खोल कपाटी ।अरे।४।

(५)

जीव तू भ्रमत सदीव अकेला,

सग साथी कोई नहिं तेरा ।टेक।

अपना सुख दुख आपहि भुगतें,

होत कुटुम्ब न भेला ।

स्वार्थ भये सब बिछुरि जात है,

विघट जात ज्यो मेला ।जीव।१।

रक्षक कोइ न पूरन ह्वै जब,

आयु अन्त की बेला ।

फूटत पारि बँधत नहिं जैसे,
दुद्धर जल को ठेला ।जीव।२।
तन धन जोवन विनशि जात,
ज्यों इन्द्र जाल का खेला।
"भागचन्द" इमि लख करि भाई,
हो सत गुरु का चेला ।जीव।३।

(६)

जीवनि के परिणामन की यह,
अति विचित्रता देखहु ज्ञानी ।टेक।
नित्य निगोद माहि तै कढि कर,
नर पर जाये पाय सुख दानी।
समकित लहि अंतर्मुहूर्त मे,
केवल पाय वरै शिव रानी ।जीवनि।१।
मुनि एकादश गुण थानक चढि,
गिरत तहां तै चित भ्रम ठानी।
भ्रमत अर्ध पुद्गल प्रावर्तन,
किंचित ऊन काल परमानी ।जी०।२।
निज परिणामनि की सँभाल मे,
तातै गाफिल मत ह्वै प्रानी।
बध मोक्ष परिणामनि ही सो,
कहत सदा श्री जिनवर वानी ।जी०।३।

सकल उपाधि निमित भावनि सो,

भिन्न सुनिज परिनतिको छानी ।

ताहि जानि रुचि ठानि होहु थिर,

"भागचन्द" यह सीख सयानी ।जी०।४।

(७)

सुमर सदा मन आतम राम ।टेक।

स्वजन कुटुम्बी जन तू पोपै,

तिनका होय सदैव गुलाम ।

सो तो हैं स्वारथ के साथी,

अन्त काल नहिं आवत काम ।सुमर।१।

जिमि मरीचिका में मृग भटके,

परत सो जब ग्रीषम अति घाम ।

तैसे तू भव माही भटके,

धरत न इक छिनहू विसराम ।सुमर।२।

करत न ग्लानि अब भोगन तें,

धरत न वीतराग परिनाम ।

फिर किमि नरक माहिं दुख सहसी,

जहां सुख लेश न आठो जाम ।सुमर।३।

तातें आकुलता अब तज के,

थिर ह्वै बैठो अपने धाम ।

"भागचन्द" वसि ज्ञान नगर मे,

तज रागादिक ठग सब ग्राम।सुमर।४।

(८)

अरे हो अज्ञानी तूने कठिन मनुष भव पायो।टेक।

लोचन रहित मनुष के कर मे,

ज्यो वटेर खग आयो।अरे।१।

सो तू खोवत विषयन माही,

धरम नही चित लायो।अरे।२।

"भागचन्द" उपदेश मान अब,

जा श्री गुरु फरमायो।अरे।३।

(९)

मन मेरे राग भाव निवार।टेक।

राग चिक्कन ते लगत है,

करम धूलि अपार ।मन।१।

राग आस्रव मूल है,

वैराग्य सवर धार ।

जिन न जान्यो भेद यह,

वह गयो नर भव हार ।मन।२।

दान पूजा शील जप तप,

भाव विविध प्रकार ।

राग बिन शिव सुख करत हैं,

राग ते ससार ।मन।३।

वीतराग कहा कियो यह,

बात प्रगट निहार ।

सोइ कर सुख हेत "द्यानत",
शुद्ध अनुभव सार ।मन।४।

(१०)

इक जोगी असन बनावै,
तिस भखत ही पाप नसावै ।टेक।
ज्ञान सुधा रस जल भर लावै,
चूल्हा शील बनावै ।
करम काष्ठ कू चुग चुग बाले,
ध्यान अगिनि प्रजलावैजी ।इक।१।
अनुभव भाजन निज गुण तदुल
समता क्षीर मिलावै ।
सोऽह मिष्ट निशकित व्यजन,
समकित छौंक लगावैजी ।इक।२।
स्याद्वाद सत भग मसाले,
गिणती पार न पावै ।
निश्चय नय का चमचा फेरे,
विरत भावना भावैजी ।इक।३।
आप पकावै आप हि खावै,
खावत नांहि अघावै ।
तदपि मुक्ति पद पकज सेवै,
नयनानद सिर नावैजी ।इक।४।

(११)

कहा परदेशी को पतियारो ।टेक।

मन माने तब चले पथ को,

साझ गिनै न सवारो ।

सबै कुटुम्ब छाड इतही पुनि,

त्याग चले तन प्यारो ।कहा।१।

दूर दिसावर चलत आप ही,

कोऊ न राखन हारो ।

कोऊ प्रीति करो किन कोटिक,

अन्त होयगो न्यारो ।कहा।२।

धन सो राचि धर्म सो भूलत,

झूलत मोह मझारो ।

इह विधि काल अनादि गमायो,

पायो नहिं भव पारो ।कहा।३।

साचे सुख सो विमुख होत है,

भ्रम मदिरा मतवारो ।

चेतहु चेत सुनहु रे भैया,

आपहि आप सभारो ।कहा।४।

(१२)

सुपने में राज पद पाया,

उठि मूरख रुदन मचाया ।टेक।

इक दिन जगल मे घसियारा,
खोदत खोदत घास विचारा।
घबरा गया धूप का मारा,
छाया मे उठि आया ।सुपने।१।

एक ईंट सिरहाने धर के,
सोय गयो पृथ्वी पै परिके।
मुदे चैन से नैन शयन में,
देखी अद्भुत माया ।सुपने।२।

देखा शहर एक अति भारी,
कोट किला गढ महल अटारी।
प्रजा तहा की मिलकर सारी,
इसको नृपति बनाया ।सुपने।३।

हाथी घोड़े रथ असवारी,
पलटन फौज करे रखवारी,
सेनापति मन्त्री दरबारी,
सबने शीश झुकाया ।सुपने।४।

बैठ तख्त पर करे हकूमत,
आज्ञा माने सारे भूपत,
छत्र चवर सिर ढुरे सेव सब,
करे देख हरषाया ।सुपने।५।

वरी नार सुन्दर सुखदाई,
चक्रवर्ति सम सम्पति पाई,

भोगत भोग अनेक चैन से,

लाखो वर्ष विताया ।सुपने।६।

इक दिन राज सभा मे वैठे,

दे मुख ताव मूछ को ऐंठे,

इतने मे कोई राहगीर,

आकर के इसे जगाया ।सुपने।७।

आंख खुली तब देखा जगल,

कहा गये वे सारे मगल,

राज पाट सब ठाठ बाट,

पल भर मे कहा समाया ।सुपने।८।

हाय हाय कर रोवन लागा,

ले खुरपा मारन को भागा,

अरे मूढ पथी ते मेरी,

खोय दई सब माया ।सुपने।६।

इसी भाति देखे जग सपना,

पर-वस्तुन को माने अपना,

लख दुनिया की झूठी थपना,

मक्खन क्यो गर्वाया ।सुपने।१०।

नीति के दोहे

क्षमा तुल्य कोउ तप नही, सुख सतोष समान ।
नहिं तृष्णा सम व्याधि है, धर्म समान न आन ।१।
तीन लोक की सम्पदा, चक्रवर्ती के भोग ।
काक बीट सम गिनत है, सम्यग्दृष्टी लोग ।२।
नित्य आयु तेरी झरे, धन पैले मिलि खाय ।
तू तो रीता ही रह्या, हाथ झुलाता जाय ।३।
अगनि चोर भूपति विपति, डरत रहै धनवान ।
निर्धन नीद निसक ले, मानत काकी हान ।४।
रोगी भोगी आलसी, बहमी हठी अज्ञान ।
ये गुन दारिदवान के, सदा रहत भयवान ।५।
सीख सरल कौं दीजिये, विकट मिले दुख होय ।
बये सीख कपि कौ दई, दिया घोसला खोय ।६।
अधिक सरलता सुखद नहिं, देखो विपिन मझार ।
सीधे बिरवा कट गये, वाके खरे हजार ।७।
लोभ पाप को बाप है, क्रोध कूर जमराज ।
माया विष की वेलरी, मान विप्रम गिरिराज ।८।
गनिका जोगी भूमिपति, बानर अहि मजार ।
इन तै राखे मित्रता, परै प्रान उरझार ।९।
वमन करे तै कफ मिटै, मरदन मेटै वात ।
स्नान किये तै पित मिटै, लघन तै जुर जात ।१०।

जो कुदेव को पूजि कै, चाहै शुभ का मेल ।
सो वालू को पेलिके, काढ्या चाहे तेल ।११।
पाप जान पर पीडवो, पुण्य जान उपगार ।
पाप वुरो पुन है भलो, कीजे राखि विचार ।१२।
प्रथम धरम पीछै अरथ, वहुरि काम को सेय ।
अन्त मोक्ष साधै सुधी सो अविचल सुख लेय ।१३।
सूत्र वाचि उपदेश सुनि, तजै न आप कषाय ।
जानि पूछि कूवै परै, तिन सौ कहा वसाय ।१४।
चेतन तुम तो चतुर हो, कहा भये मति हीन ।
ऐसो नर भव पाय के, विषयनि मे चित दीन ।१५।
पवन थकी देवन थकी, मन की दौर अपार ।
वूडे जीव अनन्त है, याकी लागे लार ।१६।
जो पढि करै न आचरन, नाहिं करै सरधान ।
ताकौ भणि वौ बोलिवौ, काग वचन परमान ।१७।
आयु कटत है रात दिन, ज्यो करोत ते काठ ।
हित अपना जल्दी करो, पड्या रहैगा ठाठ ।१८।
ममता बेटी पाप की, नरक सदन ले जाइ ।
धर्म सुता समता जिकौ, सुरग मुकति सुखदाइ ।१६।
विना पढै परतीति गहि, राख्यो गाढ अपार ।
याद करत "तुष माष" कौ, उतर गये भव पार ।२०।
सुलझै पशु उपदेश सुनि, सुलझै क्यो न पुमान ।
नाहर तें भये वीर जिन, गज पारस भगवान ।२१।

गुरु मुख सुन गाढो रह्यो, त्यागी वायस मास ।
सो श्रेणिक अब पायसी, तीर्थंकर शिववास ।२२।

सुख की इच्छा वढ रही, कर्म नही अनुकूल ।
अन्तराय मेटे विना, सुख रहे प्रतिकूल ।२३।

जैसे ज्वर के जोर सो, भोजन की रुचि जाय ।
तैसे कुकरम के उदय, धरम वचन न सुहाय ।२४।

ज्यो औषध अजन किये, तिमिर रोग मिट जाय ।
त्यो सत्गुरु उपदेश ते, सशय वेग विलाय ।२५।
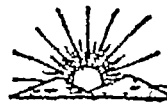
सुभाषित मणिमाला

आयुष क्षण एकोपि न लभ्य स्वर्ण-कोटिभि ।
सचेन्निरर्थको नीत , कात्तु हानिस्ततोधिका ।१।

दान भोगोनाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ।
यो न ददाति न भु क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ।२।

स एव दिवस श्लाघ्य , सा वेला सुख दायिनी ।
धर्मिणा यत्र ससर्गो शेष जन्म निरर्थकम् ।३।

चन्दन शीतल लोके चन्दनादपि चन्द्रमा ।
ताभ्या चन्दन चन्द्राभ्या, शीतल साधु-सगम ।४।

श्रोत्र श्रु तेनैव न कु डलेन, दानेन पाणिर्नतु कङ्कणेन ।
विभातिकाय करुणा पराणा, परोपकारैर्नतु चन्दनेन ।५।

किं तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणावा,
यत्राश्रिताश्चतरवस्तरवस्त एव ।
मन्या महे मलयमेव यदाश्रयेण,
ककोल निम्ब कुटजान्यपि चन्दनानि ।६।

पठन्ति चतुरो वेदान्, धर्मशास्त्राण्यनेकश ।
आत्मान नैव जानन्ति, दर्वीपाक रस यथा ।७।

पुष्पे गध तिले तैल काष्ठे वह्नि पयोघृतम् ।
इक्षौ गुड तथा देहे पश्यात्मान विवेकत ।८।

चला लक्ष्मीश्चला प्राणाश्चले जोवित मन्दिरे ।
चला चले च ससारे धर्म एकोहि निश्चल ।९।

हस्तस्य भूषण दान सत्य कण्ठस्य भूषणम् ।
श्रोत्रस्य भूषण शास्त्र, भूषणैं किं प्रयोजनम् ।१०।

भोजने वमने स्नाने मैथुने मल मोचने ।
सामायिके जिनार्चाया गृहिणा मौन सप्तकम् ।११।

न देवो विद्यते काष्ठे न पाषाणे न मृण्मये ।
भावोहि विद्यते देवस्तस्माद्भावोहि कारणम् ।१२।

मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे, दैवज्ञे भैषजे गुरौ ।
यादृशी भावना यस्य, सिद्धिर्भवति तादृशी ।१३।

विद्वत्त्व च नृपत्व च नैव तुल्य कदाचन ।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ।१४।

यो हि भ्रमति देशेषु, यश्च ससेवते बुधान् ।
तस्यस्याद्विस्तृता बुद्धिस्तैल बिन्दु रिवाम्भसि ।१५।
सत्य हित मित ब्रूयान्मर्महिंसादि वर्जितम् ।
धर्मोपदेशक सार, श्रोतृ श्रवण सौख्यदम् ।१६।
बुद्धे फल तत्वविचारण च, देहस्य सार व्रत धारण च ।
वित्तस्य सार खलु पात्र दान, वाच फल प्रीति करनराणा ।१७।
दान पूजा तपश्चैव तीर्थ सेवाश्रुत तथा ।
सर्वमेतद् वृथा तस्य, यस्य शुद्ध न मानसम् ।१८।
मानुष्य दुर्लभ लोके, पाडित्य मति दुर्लभम् ।
अर्हच्छासन मत्यन्त तपस्त्रैलोक्य दुर्लभम् ।१९।
नास्ति ध्यान समो बन्धुर्नास्ति ध्यान समो गुरु ।
नास्ति ध्यान सम मित्र नास्तिध्यान सम तप ।२०।
यो जिह्वा लम्पटो मूढो खाद्या खाद्य न मन्यते ।
अखाद्य भक्षयित्वासौ दुर्गति याति पापधी ।२१।
अन्यायोपार्जितवित्त दश वर्षाणि तिष्ठति ।
प्राप्तेत्वेकादशे वर्षे, समूल च विनश्यति ।२२।
यत्र विद्यागमो नास्ति, यत्र नास्ति धनागम ।
यत्र चात्म सुख नास्ति न तत्र दिवस वसेत् ।२३।
काम क्रोधश्च लोभश्च देहे वसन्ति तस्करा ।
ज्ञान रत्न हरन्त्येते तस्माज्जाग्रत जागृत ।२४।
अगालित जल येन पीत मजलि मात्रकम् ।
सप्त ग्राम दहोद्भूत, दुरित तस्य जायते ।२५।

देव पूजा दया दान तीर्थयात्रा जपस्तप. ।
श्रुत परोपकारित्व मर्त्य जन्म फलाष्टकम् ।२६।
ईर्ष्यी घृणीत्वसतुष्ट क्रोधनो नित्य शकित ।
परभाग्योपजीवी च षडेते दु ख भागिन ।२७।

परम उपास्य कौन ?

(युग वीर)

वे हैं परम उपास्य, मोह जिन जीत लिया ।
काम क्रोध मद लोभ पछाड़े, सुभट महा बलवान ।
माया कुटिल नीति नागिन हनि, किया आत्म सत्राण ।मोह।
ज्ञान ज्योति से मिथ्यातम का जिनके हुआ विलोप ।
राग द्वेप का मिटा उपद्रव, रहा न भय औ शोक ।मोह।
इन्द्रिय विपय लालसा जिनकी रही न कुछ अवशेष ।
तृष्णा नदी सुखा दी सारी, धरि असग व्रत वेष ।मोह।
दुख उद्विग्न करें नहिं जिनको सुख न लुभावे चित्त ।
आत्मरूप सन्तुष्ट गिने सम निर्धन और सवित्त ।मोह।
निन्दा स्तुति सम लखे बने जो निष्प्रमाद निष्पाप ।
साम्य भाव रस आस्वादन से, मिटा हृदय सताप ।मोह।
अहकार ममकार चक्र से निकले जो धर धीर ।
निर्विकार निर्वैर,हुए पी विश्व प्रेम का नीर ।मोह।

साध आत्महित जिन वीरो ने किया विश्व कल्याण ।
युग मुमुक्षु उनको नित ध्यावे, छोड सकल अभिमान ।
मोह जिन जीत लिया, वे हैं परम उपास्य ।

प्राचीन कवियों के उपदेशी पद्य

राग और वैराग्य का अन्तर

राग उदै भोग भाव लागत सुहावने से, विना राग ऐसे
लागे जैसे नाग कारे हैं । राग ही सो पाग रहे तन मे
सदीव जीव, राग गये आवत गिलानि होत न्यारे हैं ।राग
सो जगत रीति झूठी सव साची जानै, राग मिटै सूझत
असार खेल सारे हैं । रागी विन रागी के विचार मे बडो ही
भेद, जैसे भटा पथ्य काहू काहू को वयारे हैं ।१।

भोग निषेध

तू नित चाहत भोग नए नर पूरब पुण्य बिना किम पै है
कर्म सजोग, मिलै कहि जोग, गहै तव रोग न भोग
सकै है । जो दिन चार को व्योंत बन्यो कहु तो
परि दुर्गति मे पछितै है । यो हित यार सलाह
यही कि "गई कर जाहु" निवाह न ह्वै है ।२।

देह स्वरूप

मात पिता रज वीरज सौ, उपजी सव सात कुघात
भरी है। माखिन के पर माफिक वाहर चाम के
वेठन वेढ घरी है। नाहिं तो आय लगे अव ही
वक वायस जीव वचै न घरी है। देह दशा यह दीखत
भ्रात घिनात नही किन वुद्धि हरी है।३।

शिक्षा

सौ वरस आयु ताका लेखा करि देखा सव आधी तो
अकारथ ही सोवत विहाय रे। आधी मे अनेक रोग, वाल
वृद्ध दशा भोग, और हू सजोग केते ऐसे वीत जाय रे।
वाकी अव कहा रही, ताहि तू विचार सही, कारज की
वात यही नीकै मन लाय रे। खातिर मे आवे तो खलासी
कर इतने मे, भावै फसि फद वीच दीनो समझाय रे।४।

संसारी जीव का चिंतवन

चाहत हैं धन होय किसी विध तौ सव काज सरै जिय राजी।
गेह चिनाय करू गहना कछु व्याहि सुता सुत वाटिये भाजी।
चिततयौं दिन जाहिं चले जम आनि अचानक देत दगाजी।
खेलत खेल खिलारि गये, रहि जाय रुपी शतरज की वाजी।५।

चार रत्न

साचौ देव सोई जामैं, दोष को न लेश कोई, वहै गुरु
जाकै उर काहू की न चाह है। सही धर्म वही जहा,

करुणा प्रधान कही ग्रन्थ जहा आदि अत एक सौ निवाह है। ये ही जग रत्न चार इनको परख यार, साचे लेहु झूठे डार नर भौ को लाह है। मानुष विवेक विना पशु के समान गिना, तातै याहि बात ठीक पारनी सलाह है।६।

कुकवि निन्दा

राग उदै जग अध भयौ सहजै सब लोगन लाज गवाई। सीख विना नर सीखत है, विसनादिक सेवन की चतुराई। ता पर और रचै रस काव्य, कहा कहिये तिनकी निठुराई। अध असूझन की अँखियान मे झोकत है रजराम दुहाई।७।

मिष्ट वचन

काहे को बोलत बोल बुरे नर, नाहक क्यो जस धर्म गमावै। कोमल बैन चवै किन ऐन लगै कछु है न सवै मन भावै। तालु छिदै रसना न भिदै न घटै कछु अक दरिद्र न आवै। जीभ कहैं जिय हानि नही, तुझ जी सब जीवन को सुख पावै।८।

यज्ञ में हिंसादि निषेध

कहै दीन पशु सुन यज्ञ के करैया मोहि, होमत हुताशन मे कौन सी बडाई है। स्वर्ग सुख मैं न चहू, देय मुझे यो न कहू घास खाय रहू मेरे यही मन भाई है। जो तू यह जानत है, वेद यो बखानत है, जज्ञ जरचा

जीव पावै स्वर्ग सुखदाई है। डारे क्यो न वीर यामे अपने कुटुम्ब ही को, मोहि जिन जारे जगदीश की दुहाई है।६।

धैर्य शिक्षा

जो धन लाभ लिलार लिख्यो लघु दीरघ सुकृत से अनुसारै। सो लहि है कछु फेर नही, मरु देश के ढेर सुमेर सिधारै। घाट न बाढ कही वह होय कहा कर आवत सोच विचारै। कूप किधौं भर सागर मे नर, गागर मान मिलै जल सारै।१०।

ज्ञानी के वस्तु स्वभाव का विचार

जीवन मरण लाभ हानि जस अपजस, तन धन परियन सब आन आन है। निज निज परिणाम रूप सब परिणमे अन्यथा न होय कहे भाषी भगवान है। काहू मैं तै काहु को सयोग वा वियोग होउ, मेरे तो न यासे कछु विरधै न हानि है। मैं तो एक ज्ञायक स्वभाव अविनाशी सदा उपज खपज विधि उदै पखान है।११।

यथार्थ ज्ञान का लक्षण

जथारथ ज्ञान जब फुरै इस आतम के, तब ये चिन्ह आपै आप प्रगटत है। भव तन भोगन से सहज विरागभाव, इन्द्रिय दमन पुनि लोभ उछटत है। मूये कौन शोक अनहूये को न सोच जाके अभय अक्रोध मन वाको सुलटत है।

दिल ह्वै उदार धरै दया वृष,लाज भार प्राणी जात प्यार,
उन मग उलटत है ।।१२।।

दुःख का कारण

लोक थिति ज्ञेय विधि उदै अनुसार सब, अपने स्वभाव
रूप परिणमे सब ही । तहा मोह उदै करि निज चाह अनुसार
परिणाया चाहे वे न परिणवे कब ही । होय तब आतुर
विषादित विशेष पेन वै वे नही चाह त्याग मुख गुर
खही । या ही हेतू थकी भूत वर्तमान दुखी भयो,
भावी दुखी होय यो न ससै कछु फब ही ।१३।

मनुष्य का शरीर काने सांठे के समान है

यह नर तन घुन करि खाये साठे सम, दुख रूप
गाठन सो भरौ सर्वत्र है । मूल मे न रस अवसान मे
विरस अर, मध्य की अवस्था,भरी व्याधि सौ विचित्र है ।
विषै रस लोभ सौं विगारौ तो विगारौ कोई, जा मे नही
रसःस्वाद महा अपवित्र है । लगाय धर्म साधन मे करौ
परभव वीज, तो अपार सार सुख भोगौयक छत्र है ।१४।

सुख दुख का मूल कारण

होय मन चाही तहा मानत जगत सुख, अनचाही होय
वहा दुख मानियत है । चाही अनचाही नही अपने पराये
वश, भवितव्य अर विधि,सब आनियत है । सुख दुख
हेत माही राग द्वेष परिणाम, याही भ्रम करि विधि बध

ठानियत है। जहा राग द्वेष नाहि तहा सुख दुख नाहि
सुख दुख मूल राग द्वेष जानियत है ।१५।

लोक प्रवृत्ति और धर्म विधि

कोई देखा देखी कोई कुल की प्रवृत्ति सारु अल्प
विशेप धर्म क्रिया आचरत है। कोई लाज कोई
काज कोई भय पच राज, कोई ख्याति लाभ हेत तन
सो करत है।
सो न धरमातम धरम न स्वभाव ज्ञाता ममता
मगन सो न भव उधरत है। नय और प्रमाण
जुक्ति आगम सौ ठीक पाडि गहै सोई भव्य भवसागर
तरत है ।१६।

धर्मात्मा का सुख

जिनकै प्रवृत्ति एक देश हू धरम की है, तिनकै न
धन तोऊ सुखी चक्रधर ते। विषै भोग वस्तु छते
अनछते सम रूप, सरधै न सुख दुख होना कभी
परते।। गई को न सोच जाकै आगे की न चाह कछू
वर्तमान जैसें तैसे वरतै उकरतै। मोह की मरोर मे
सदैव सावधान रहै, अरिन के सनमुख जैसे सूर अर तै ।१७।

देह की दशा

कारागार सम यह देह तासौ कहा नेह, अस्थि रूप
थूल पाषाणनि सो सवारी है। बेढी नसा जाल करि

पूरित रुधिर मास चाम करि आवरत मल मूत क्यारी है। सडन स्वभाव खान पान के अधार बहु रोगनि सौं भरी दुख दोषनि सौं भरी है। रचि विधि वैरी धरै आयु रूप वैरी अति, अदर अधेरी तोऊ लगै तोहि प्यारी है।१८।

उत्तम, मध्यम अधम व अधमाधम जीवों का स्वभाव

उत्तम पुरुष की दशा ज्यौं किसमिस दाख बाहिर अभीतर विरागी मृदु अग है। मध्यम पुरुष नालियर की सी भाति लिये, बाहिज कठिण हिए कोमल तरग है। अधम पुरुष बदरी फल समान जाके, बाहिर सोदी से नरमाई दिल सग है। अधम सो अधम पुरुष पू गी फल सम; अतरग बाहिर कठोर सरवग है।१६।

मूढ़ का विषय में मगन पणा

जैसे कोऊ कूकर क्षुधित सूके हाड चाबे, हाड़नि की कोर चहु ओर चुभे मुख मे। गाल तालु रसना सो मुखनि को मास फाटे, चाटे निज रुधिर मगन स्वाद सुख मे। तैसे मूढ विषयी पुरुष रति रीत ठाणे, ता मे चित्त साने हित माने खेद दु ख मे। देखे परतक्ष वल हानि मल मूत खानि, गहे न गिलानि पगि रहे राग ऊख मे।२०।

जग वासी जीव के मोह का स्वरूप

जासू तू कहत यह सपदा हमारी सो तो, साधुनि ये डारी ऐसे जैसे

नाक सिनकी । तासू तू कहत हम पुण्य जोग पाइ सो तो, नरक साई है वढाई डेढ दिन की । घेरा माहि परचो तू विचारे आखिनि को, माखिन के चूटत मिठाई जैसे भिनकी । एते ःरि न उदासी जगवासी जीव जगमे असाता है न साता एक छिनकी।२

आत्मानुभव करने की विधि

प्रथम सुदृष्टि सो शरीर रूप कीजे भिन्न, तामे और सूक्षम शरीर भिन्न मानिये । अष्ट कर्म भाव की उपाधि सोई कीजे भिन्न, ताहू मे सुबुद्धि को विलास भिन्न जानिये । ता मे प्रभु चेतन विराजत अखड रूप, वहे श्रुत ज्ञानके प्रमाण ठीक आनिये । वाहि को विचार कर वाही मे मगन हूजे, वाको पद साधिबे को ऐसी विधि ठानिये ।२२।

परमार्थ की शिक्षा

वनारसी कहे भैया भव्य सुनो मेरी सीख, केहू भाति कैसे हू के ऐसा काज कीजिये । एक हू मुहुरत मिथ्यात्व को विध्वस होइ, ज्ञान को जगाय अस हस खोज लीजिये । वाही को विचार वाको ध्यान यह कौतूहल यो ही भर जनम परम रस पीजिये । तजि भव वास को विलास सविकाररूप, अतकरि मोह को अनंतकाल जीजिये ।२३।

अनुभव प्रशंसा

जब चेतन सभारि निज पौरुष, निरखे निज दृग सो निज मर्म । तब सुख रूप विमल अविनाशिक

जाने जगत शिरोमणि धर्म । अनुभव करे शुद्ध चेतन को, रमे स्वभाव वमे सब कर्म । इहि विधि सधे मुकति को मारग, अरु समीप आवे शिव सर्म ।२४।

सूक्ति सुधा संग्रह

(१) उन्नति की जड श्रद्धा और साहस है ।

(२) चरित्र ही मनुष्यता की कसौटी है ।

(३) स्वावलम्बी सदा सुखी रहता है ।

(४) जहा लघुता है वहाँ प्रभुता है ।

(५) बुराई का वदला भलाई से दो ।

(६) दु ख की जड वैर विरोध और ईर्ष्या है ।

(७) निन्दा करना हो तो अपनी निन्दा करो ।

(८) आत्मा पर नियन्त्रण ही सच्चा सयम है ।

(९) अन्तर्मु ख होना सच्ची पवित्रता है ।

(१०) नि शल्य अवस्था ही मोक्ष का मार्ग है ।

(११) स्वाध्याय से उत्कृष्ट और कोई तप नही है ।

(१२) कहने की प्रकृति छोडो, करने का अभ्यास करो ।

(१३) सदाचार ही जीवन है ।

(१४) जग से ३६ (सर्वथा पराङ्मुख) और आत्मा से ६३ (सर्वथा अनुकूल) रहो, यही कल्याण कारक है ।

(१५) प्रयास करना तब तक न छोडो जब तक अभीष्ट सिद्ध न हो जाय ।

(१६) जो सकल्प करो उसे पूर्ण करने की चेष्टा करो ।

(१७) धीरता सुख की जननी है ।

(१८) सद्भावना मे शान्ति और सुख निहित है ।

(१९) त्याग, कल्याण का प्रमुख मार्ग है ।

(२०) प्रात काल उठकर आत्म निरीक्षण करो ।

(२१) आलस्य ही मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है ।

(२२) परिश्रम वह सोने की कुजी है, जिससे भविष्य के द्वार खुलते है ।

(२३) सुख दु ख अपनी मान्यता मे है, पर पदार्थ मे नही ।

(२४) जो स्वभाव की साधना करते हैं वे ही साधु हैं ।

(२५) वस्तु का असली रूप ज्ञान चक्षु से ही दिखता है ।

(२६) पापी से नही, पाप से घृणा करो ।

(२७) जो हित की बात नही सुनता, वही बहरा है ।

(२८) हमारा सच्चा व्यवहार ही हमारी उन्नति का कारण है ।

(२९) पढाई ऐसी होनी चाहिये जिससे आत्म दर्शन हो सके ।

(३०) शूर वही है जो इन्द्रियो को जीते ।

(३१) अपने को नही पहचानना ही सबसे बडी भूल है ।

(३२) लालची को सतोप नही होता ।

(३३) लक्ष्मी का सदुपयोग परोपकार ही है ।

ध्यान के भेद व स्वरूप

ध्यान—"चित्त विक्षेप त्यागो ध्यानम्" अर्थात् चित्त के विक्षेप का त्याग करना ध्यान है अथवा किसी एक विषय मे निरन्तर रूप से ज्ञान का रहना ध्यान है।

ध्यान के भेद—ध्यान चार प्रकार का है। आर्त, रौद्र, धर्म्य और शुक्ल। इन चार ध्यानो मे से पहले के दो छोडने योग्य है क्योकि वे खोटे ध्यान हैं और ससार को वढाने वाले हैं तथा आगे के २ अर्थात् धर्म्य और शुक्ल ध्यान ग्रहण करने योग्य हैं। क्योकि 'परे मोक्ष हेतू' अर्थात् अन्त के दो ध्यान मोक्ष के हेतु हैं।

१ **आर्तध्यान**-ऋत का अर्थ दु ख है। जिसके होने मे दु ख का उद्वेग या तीव्रता निमित्त है वह आर्तध्यान है। इसके ४ भेद हैं। (१) अप्रिय वस्तु के प्राप्त होने पर उसके वियोग के लिए सतत चिन्ता करना अनिष्ट सयोगज आर्तध्यान है (२) प्रिय वस्तु के वियोग होने पर उसकी प्राप्ति के लिए सतत चिन्ता करना इष्ट वियोगज आर्त ध्यान है। (३) वेदना के होने पर उसके दूर करने के लिए सतत चिन्ता करना वेदना नाम का आर्तध्यान है (४) आगामी विषय भोगो की प्राप्ति के लिए निरन्तर चिन्ता करना निदान नाम का आर्तध्यान है। यह आर्तध्यान अविरत, देश विरत और प्रमत्त सयत जीवो के होता है।

२ रौद्र ध्यान—रुद्र का मतलब क्रूर परिणामो से है। जो क्रूर परिणामो के निमित्त से होता है वह रौद्र ध्यान है यह चार प्रकार का है। (१) हिंसा करने कराने मे व हिंसा हुई सुनकर आनन्द मानना हिंसानन्दी रौद्रध्यान है। (२) असत्य बोलकर बुलवाकर, बोला हुवा जानकर आनन्द मानना मृषानन्दीरौद्र ध्यान है। (३) चोरी करके कराके व चोरी हुई सुनकर हर्षित होना चौर्यानन्दी रौद्रध्यान है। (४) परिग्रह बढाकर, बढवा कर व बढना हुआ देखकर हर्ष मानना परिग्रहानदी रौद्रध्यान है। यह ध्यान प्रारभ के पांच गुणस्थान तक सभव है।

३ धर्म्य ध्यान—जो शुभ राग और सदाचरणका पोषक है वह धर्म्यध्यान है इसके ४ भेद है। (१) जिनेन्द्र की आज्ञानुसार आगम के द्वारा तत्वो का विचार करना आज्ञाविचय धर्म्य ध्यान है (२) अपने व अन्य जीवो के अज्ञान व कर्म के नाश का उपाय विचारना अपायविचय धर्म्यध्यान है। (३) द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव इनकी अपेक्षा कर्म कैसे कैसे फल देते है, इसका सतत विचार करना विपाकविचय धर्म्यध्यान है। (४) तीन लोक का आकार विचारना व अपने आत्मा के स्वरूप का चिन्तवन करना सस्थानविचय धर्म्यध्यान है। इसके

४ भेद है। (१) पिडस्थ (२) पदस्थ (३) रूपस्थ (४) रूपातीत।

(अ) **पिडस्थ**—ध्यान करने वाला अपने मन, वचन और काय को शुद्ध करके एकान्त स्थान मे जावे और वहा पद्मासन, खड्गासन या किसी अन्य ध्यानासन द्वारा तिष्ठ कर अपने शरीर मे विराजत ज्योति स्वरूपी निज आत्मा का ध्यान करे।

(ब) **पदस्थ**—णमोकार मत्र का या अन्य परमेष्ठी-वाचक मत्रो का ध्यान करना।

(स) **रूपस्थ**—समवशरण मे विराजमान तीर्थकर के स्वरूप का ध्यान करना। किसी अर्हन्त की प्रतिमा का ध्यान करके अर्हन्त के स्वरूप का विचार करना।

(द) **रूपातीत**—सिद्ध आत्माका तथा अपने शुद्धात्मा का ध्यान करना।

धर्म्यध्यान अविरत, देशविरत; प्रमत्त सयत और अप्रमत्त सयत जीवो के सभव है।

४ **शुक्ल ध्यान**—मन की अत्यन्त निर्मलता के होने पर जो एकाग्रता होती है वह शुक्ल ध्यान है। इसके चार भेद हैं।

(१) पृथक्त्ववितर्क (२) एकत्ववितर्क (३) सूक्ष्म

क्रिया प्रतिपाति (४) व्युपरत क्रिया निर्वति (१) जिसमे वितर्क और विचार दोनो हो उसे पृथक्त्व वितर्क नामक शुक्ल ध्यान कहते हैं यह काय, वचन, मन इन तीनो योग के धारक के होता है। (२) जो केवल वितर्क से सहित हो और तीन योगो मे से किसी एक योग के धारक के होता है उसे एकत्व वितर्क शुक्लध्यान कहते है। (३) सूक्ष्म काय योग के आलम्बन से जो ध्यान होता है उसे सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति नामक शुक्ल ध्यान कहते हैं। (४) जिसमे आत्म प्रदेशो मे परिस्पन्द पैदा करने वाली श्वासोच्छ्वास आदि समस्त क्रियाए निवृत्त हो जाती हैं, रुक जाती हैं उसे व्युपरत क्रिया निर्वति नामक शुक्लध्यान कहते है यह योगरहित जीवो के होता है । इस ध्यान के होते ही साता वेदनीय कर्म का आस्रव रुक जाता है और अन्त मे शेष रहे सब कर्म क्षीण हो जाने से मोक्ष प्राप्त होता है।

शुक्ल ध्यान का पहला भेद उपशम श्रेणी के सब गुणस्थानो मे और क्षपक श्रेणि के दसवे गुणस्थान तक होता है तथा दूसरा भेद वारहवे गुणस्थान मे होता है। इसी प्रकार शुक्लध्यान का तीसरा भेद सयोग केवली के और चौथा भेद अयोग केवली के होता है।

लौकिक फल के चाहने वालो के जो ध्यान होता है वह या तो आर्त्तध्यान है या रौद्रध्यान । अत मुमुक्षुओ को इस आर्त्त तथा रौद्रध्यान का परित्याग कर धर्म्यध्यान तथा शुक्ल ध्यान की उपासना करनी चाहिये ।

जो लोग यह कहते हैं कि इस क्षेत्र मे वर्तमान काल ध्यान के लिये उपयुक्त नही है । उनके इस कथन मे कोई सार नही है । क्योकि मोक्ष पाहुड मे कहा है —

गाथा—भरहे दुस्सम काले, धम्मज्झाण हवेइ णाणिस्स ।
त अप्प सहावट्ठियेण हु मण्णई सो दु अण्णाणी ।।७६।।

अर्थात् इस भरत क्षेत्र तथा दु षम पचमकाल मे ज्ञानी के धर्मध्यान होता है और वह आत्म स्वभाव मे स्थित, आत्मभावना मे तत्पर के होता है जो इसे नही मानता वह अज्ञानी है । तत्वानुशासन मे भी कहा है—

श्लोक—अत्रेदानी निषेधन्ति, शुक्ल ध्यान जिनोत्तमा ।
धर्म्यध्यान पुन प्राहु श्रे णिभ्या प्राग्विवर्तिनाम् ।।८३।।

अर्थात् यहा इस पचमकाल मे जिनेन्द्र देव शुक्लध्यान का निषेध करते है, परन्तु दोनो श्रे णियो से पूर्ववर्तियो के धर्म्य ध्यान वतलाते है, इससे ध्यान मात्र का निषेध नही ठहरता । अत ध्यान के अभ्यास मे हतोत्साह न होना चाहिए । श्रद्धा के साथ उसे वरावर आगे वढाते रहना चाहिये ।

पदार्थो मे इष्ट अनिष्ट की कल्पना ही विकल्प की जननी है अत विकल्प का अभाव करने के लिए पदार्थो मे मोह, राग द्वेष

को छोडना ही चाहिए। इसी से मन स्थिर होकर ध्यान की सिद्धि होगी। ध्यान का विशेष वर्णन ज्ञानार्णवजी मे है अत उसका स्वाध्याय करना चाहिए।

जप, जाप्य–मंत्र व विधि

जप—परमेष्ठी वाचक विभिन्न मन्त्रो का किसी नियत परिमाण मे स्मरण करना अथवा पुन पुन मन्त्रोच्चारण जप कहलाता है। आचार्यो ने जप का फल पूजा व स्तोत्र पाठ मे भी कई गुना बताया है, कहा भी है —

श्लोक—पूजा कोटि सम स्तोत्र, स्तोत्र कोटि समोजप ।
जप कोटि सम ध्यान, ध्यान कोटि समोलय ॥

अर्थात् एक कोटि बार पूजा करने का जो फल मिलता है उतना फल एक बार स्तोत्र पाठ करने मे है। कोटि बार स्तोत्र पढने से जो फल होता है उतना फल एक बार जप करने मे होता है। इसी प्रकार कोटि जप के समान एक बार के ध्यान का फल और कोटि ध्यान के समान एक बार के लय का फल जानना चाहिये।

उपर्युक्त पूजा, स्तोत्रादि का जहा फल उत्तरोत्तर अधिकाधिक है वहा उनका समय उत्तरोत्तर हीन हीन है। उनके उत्तरोत्तर समय की अल्पता होने पर भी फल की महत्ता का

कारण उन पाचो को उत्तरोत्तर हृदय तल स्पर्शिता है। पूजा करने वाले व्यक्ति के मन वचन काय की क्रिया अधिक वहिर्मुखी एव चचल होती है। पूजा करने वाले से स्तुति करने वाले के मन, वचन, काय की क्रिया स्थिर और अन्तर्मुखी होती है। आगे जप ध्यान और लय मे यह स्थिरता और अन्तर्मुखता उत्तरोत्तर वढती जाती है यहा तक कि लय मे वे दोनो उस चरम सीमा को पहुच जाती है, जो कि छद्मस्थ वीतराग के अधिक से अधिक सभव है।

धर्मध्यान के पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत ये चार भेद हैं। इनमे से आदि के दो भेदो को जप सज्ञा और अन्तिम दो भेदो को ध्यान सज्ञा महर्षियो ने दी है। शुक्ल ध्यान को परम समाधि रूप लय नाम से व्यवहृत किया गया है।

जप करने से पापो का नाश व पुण्य का वन्ध होता है।
(अनेकान्त वर्ष १४ किरण ७ मे)

जाप्य मंत्र

गाथा—पणतीस सोल छप्पण, चदु दुग मेग च जवह झाएहु।
परमेट्ठि वाचयाण, अण्ण च गुरुवएमेण (द्र० स० ४६)

अर्थात् परमेष्ठी वाचक पैंतीस अक्षरो को, सोलह अक्षरो को, छ अक्षरो को, पाञ्च अक्षरो को, चार अक्षरो को, दो अक्षरो को, और एक अक्षर को इसके अतिरिक्त गुरु के उपदेश से अन्य सिद्ध चक्रादि मन्त्रो को भी जपो और ध्याओ।

जाप्य मत्र मुख्य ७ प्रसिद्ध हैं।

३५ अक्षरी—णमोकार मत्र ।

१६ अक्षरी—अरहत सिद्ध आइरिया उवज्झाय साहू ।

६ अक्षरी—अरहत सिद्ध ।

५ अक्षरी—असि आ उसा ।

४ अक्षरी—अरहत ।

२ अक्षरी—सिद्ध ।   १ अक्षरी—ॐ ।

विधिः—सवसे प्रथम मन्त्र पर श्रद्धा का होना जरूरी है। विना श्रद्धा के किया गया काम कभी सफल नही हो सकता। कहा भी है—'विश्वास फलदायक' विश्वास ही फल देता है, दूसरे जिस कार्य पर करने वाले की श्रद्धा नही होती उसमे उसका मन नही लगता और विना मन लगाये काम करने से कोई लाभ नही होता। अत श्रद्धा पूर्वक मन को लगाना सवसे प्रथम कर्तव्य है। दूसरे मत्र का उच्चारण विधि पूर्वक और शुद्ध होना चाहिये। अत स्थिर चित्त से मन, वचन और काय को एकाग्र करके निराकुल होकर किसी शान्त एकान्त स्थान मे जहा कोई कोलाहल न हो सुखासन से वैठकर या खडे होकर मन्त्र का जाप करना चाहिए। माला मे १०८ दाने होते हैं। प्रत्येक मन को माला के एक एक दाने पर कहना चाहिये। माला को दाहिने हाथ के अगूठे पर रखना चाहिए और दाहिना हाथ हृदय के पास रखना चाहिये। माला इतनी लम्वी न

हो कि फेरते समय दाहिने हाथ के अगूठे पर लटकाने पर नाभि के नीचे तक पहुचे ।

१०८ वार मत्र जपने का कारण— गृहस्थो को स रभ समारभ और आरभ ये तीन, मन से वचन से तथा काय से स्वय करने पडते है कराने पडते हैं व अनुमोदना करनी पडती है, जो क्रोध, मान, माया व लोभ के वश मे होकर होते हैं । इसलिए इनके परस्पर गुणने से १०८ भग वन जाते हैं । जैसे सरभ मन से, स्वय क्रोध के वश होकर किया यह एक भग हुआ (२) समारभ मन से स्वय क्रोध के वश होकर किया (३) आरभ मन से स्वय, क्रोध के वश होकर किया । इसी प्रकार प्रत्येक वचन पर फिर काय पर लगाना, फिर कृत, कारित, अनुमोदना फिर कषायो पर लगाने से १०८ भग हो जाते है, इनसे कर्मास्रव होता है इसलिये एक एक आस्रव द्वार को रोकने के लिये एक एक मन्त्र का जाप करते हैं ।

भक्त की तीन अवस्थायें

"दासोऽह" रटता प्रभो आया जन तुम पास ।
"द" दर्शत ही हट गयो, "सोऽह" रह्यो प्रकास ।।
मोऽह सोऽह ध्यावते, रह नहि सक्यो सकार ।
"दीप" "अह" मय हो गयो, अविनाशी अविकार ।।

कषायों के दृष्टान्त और उनके फल

पाहन की रेख, थभ पाथर को वासविडा,
कृमि रग सम, चारो नर्क माहि ले धरें ।
हल लीक हाड थभ मेप सीग गाडीमल,
क्रोधमान माया लोभ तिरजच मैं परें ॥
रथ लीक काठ थभ गोमूत देह मैल मे,
कपाय भरे जीव मानुप मे अवतरें ।
जल रेखा वेत दड खुरपा हलद रग,
द्यानतए चारिभाव सुर्ग रिद्धि को करें ॥८६॥च०श०॥

अर्थः—क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार कषायो के परिणामो की तीव्रता मदता के अनुसार १६ भेद होते हैं। उन सबके क्रम से दृष्टान्त तथा फल कहते हैं। अनन्तानुबन्धी क्रोध पत्थर की लकीर के समान अनन्तकाल तक ठहरता है, बहुत ही कठिनाई से नष्ट होता है। अनन्तानुबन्धी मान पाषाण के खभ के समान अनन्तकाल तक सीधा ज्यो का त्यो बना रहता है, सहज ही नही नवता है। अनन्तानुबन्धी माया वास के भिडे के समान बहुत ही टेढी मेढी रहती है। और अनन्तानुबन्धी लोभ कृमि रग अर्थात् लाख के रग के समान बहुत ही पक्का होता है, अनन्तकाल तक बना रहता है, शीघ्र नही धुलता। ये चारो कषाय सम्यक्त्व को नही होने देते है और जीव को नरक गति मे ले जाते हैं। अप्रत्याख्यानी क्रोध खेत जोतने से जैसे हल की लकीर बन जाती है उसके समान छह महीना तक रहता है। अप्रत्याख्यानी मान हड्डी के स्तभ

के समान है, नव सकता है परन्तु मुश्किल से । अप्रत्याख्यानी माया जिस तरह मेढे के सीग साधारण टेढे और लडने मे घिस घिस कर कम होते हैं उसी तरह टेढी और धीरे २ कम होती हैं । अप्रत्याख्यानी लोभ गाडी के ओगन के रग समान है, कठिनाई से छूट सकता है । ये चार कषाय सम्यक्त्व घात तो नही करते हैं, परन्तु व्रत अणु मात्र भी ग्रहण नहीं करने देते है और जीव को तिर्यंच गति मे ले जाते हैं । प्रत्याख्यानी क्रोध गाडी के चक्के की लकीर के समान होता है, अधिक समय तक नही ठहरता है । प्रत्याख्यानी मान लक्डी के स्तभ के समान होता है प्रयत्न करने से नव सकता है । प्रत्याख्यानी माया गोमूत्र के समान कम टिढाई लिये होती है । प्रत्याख्यानी लोभ शरीर के ऊपर जो मैल लग जाता है, उसके समान होता है, शीघ्र छूट जाता है । ये चारो कषाय महाव्रत धारण नही करने देते हैं और इन कषायो से भरे हुए जीव प्राय मनुष्य गति मे जन्म पाते हैं । ये प्रत्याख्यानी कषाय एक बार के उत्पन्न हुए अधिक से अधिक १५ दिन तक रहते है । सज्वलन क्रोध पानी की लकीर के समान है, तत्काल ही नष्ट हो जाता है । सज्वलन मान बेत की छडी के समान है जो थोडे से प्रयत्न से ही नच जाती है । सज्वलन माया खुरपा के समान है, उसमे थोडी सी ही टिढाई रहती है और सज्वलन लोभ हल्दी के रग के समान है । बहुत सुगमता से मिट जाता है । श्री द्यानतरायजी कहते हैं कि ये चार कषाय भाव स्वर्ग-ऋद्धि के करने वाले हैं, परन्तु इनके होते हुए यथाख्यात चारित्र नही हो सकता ।

कषाय—आत्मा के भीतरी कलुप परिणाम को कषाय कहते है। क्रोधादि परिणाम आत्मा को कुगति मे ले जाने के कारण कपते हैं, आत्मा के स्वरूप की हिसा करते है अत ये कषाय हैं। कषाय के २५ भेद है।

१६ कषाय—अनन्तानुवन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ
अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ
प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ
सज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ

९ अकषाय—हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपु सकवेद

षट लेश्या

लेश्या—जो कर्मो से आत्मा को लिप्त करती है उसको लेश्या कहते हैं अथवा जो आत्मा और कर्म का सम्बन्ध करने वाली है उसे लेश्या कहते हैं।

लेश्या दो प्रकार की है (१) द्रव्य लेश्या (२) भावलेश्या कषाय से अनुरजित जीव की मन, वचन, काय की प्रवृत्ति भाव लेश्या कहलाती है और शरीर के रग को द्रव्य लेश्या कहते है। देव व नारकियो मे द्रव्य व भाव लेश्या

समान होती है, पर अन्य जीवो मे इनकी समानता का नियम नही है। द्रव्य लेश्या आयु पर्यन्त एक ही रहती है पर भाव लेश्या परिणामो के अनुसार बराबर वदलती रहती है। लेश्या के ६ भेद हैं। तत्वार्थ बोध मे कहा है—

माया क्रोधरु, लोभ मद, है कषाय दुखदाय।
तिनसे रजित भाव जो, लेश्या नाम कहाय ॥१॥

षट लेश्या जिनवर कही, कृष्ण नील कापोत।
पीत पद्म छठी शुकल, परिणामंहि ते होत ॥२॥

कठियारे षट भावधर, लेन काष्ठ को भार।
बन चाले भूखे हुए, जामुन वृक्ष निहार ॥३॥

कृष्ण वृक्ष काटन चहे, नील जु काटन डालु।
लघु डाली कापोत उर, पीत सर्व फल डाल ॥४॥

पद्म चहे फल पक्व को, तोड खाऊ मैं सार।
शुक्ल चहे धरती गिरे, लू पक्के निरधार ॥५॥

जैसी जिसकी लेश्या, तैसा बाधे कर्म।
श्री सद्गुरु सगति मिले, मन का जावे भर्म ॥६॥

कृष्ण नारकी होत है, थावर नील प्रभाव।
तिरजग होत कपोत तें, पीत लहे नर आव ॥७॥

पद्म थकी ह्वै देव पद, शुक्ल शिवाले देव।
उतकट लेश्या भाव के, काज करो जित येव ॥८॥

इनका लक्षण यह है :—

(१) कृष्ण लेश्या वाला तीव्र क्रोधी, बैर न छोडे, लडाक् स्वभाव, निर्दयी, दुष्ट, गुरुओ की बात न माने तथा स्वच्छन्दी, बुद्धि हीन, विषय लम्पटी, मानी, कुटिल और आलसी होता है ।

(२) नील लेश्या वाला अति निद्रालु, दूसरो को ठगने मे दक्ष, धन धान्यादि के सग्रह मे तीव्र लालसा वाला होता है ।

(३) कापोत लेश्या वाला, परनिदक, अति क्रोधी, शोकी भयभीत, ईर्ष्यावान, स्वप्रशसक, पर का विश्वास नही करने वाला होता है ।

(४) पीत लेश्या वाला कार्य अकार्य, सत्य असत्य को जाने, दयावान, दानी व समदर्शी होता है ।

(५) पद्मलेश्या वाला त्यागी, भद्र, गुरुभक्त, दयालु और शुभ कार्य करने वाला होता है ।

(६) शुक्ल लेश्या वाला अनिन्दक अपक्षपाती, समदृष्टि वैरागी, पाप कार्यो से उदासीन होता है ।

पांच लब्धियां

थावर तै सैनी होय ए ही खय उपसम है,
दान पूजा उद्यत विसोही उपयोग है।
गुरु उपदेस तत्वज्ञान सो ही देसना है,
अत कोरा कोरी कर्म की थिति प्रायोग है।
जग में अनंत वार चारि लब्धि पाई इनि,
कर्न लब्धि बिना समकित को न जोग है।
अधो अपूरव अनिवृत्त कर्न तीन करै,
मिथ्या माहि पीछे चौथा सम्यक नियोग है।।च०श०।।

अर्थ.—अनादि मिथ्यादृष्टि या सादि मिथ्यादृष्टि जीव को बहुत काल से एकेन्द्री मे भ्रमण करते करते, समय पाकर स्थावर से निकलकर सैनी पचेन्द्रियत्व की प्राप्ति होने को क्षयोपशम लब्धि कहते हैं। लब्धि शब्द का अर्थ प्राप्ति है। शुभ कर्म के उदय से दान पूजादि शुभ कार्यों के करने के लिये उद्यत होने को विशुद्धि लब्धि कहते हैं। सद्गुरु के उपदेश से तत्वज्ञान की प्राप्ति होने को देशनालब्धि कहते हैं।

काल पाकर व्रत धारण करके और उपवासादि तपश्चर्या करके अथवा और भी किसी प्रकार आयु कर्म के सिवा शेष सातों कर्मों की स्थिति को अन्त कोडा कोडी सागर प्रमाण कर देना सो प्रायोग्य लब्धि है।

ये चारो लब्धिया इस जीव को यद्यपि अनन्त बार हुई हो परन्तु पाचवी करण लब्धि जब तक नही हुई हो तब तक इस जीव को सम्यक्त्व का लाभ नही होता। क्योकि करण लब्धि के बिना सम्यक्त्व की प्राप्ति नही होती है, ऐसा नियम है। करण नाम परिणामो का है। जब मिथ्यात्वी जीव सम्यक्त्व के सम्मुख होता है उस समय उसके परिणाम अध.करण, अपूर्व करण और अनिवृत्तिकरण रूप होते है। जिस करण मे उपरितन समयवर्ती तथा अधस्तन समयवर्ती जीवो के परिणाम सदृश तथा विसदृश हो उसे अध करण कहते हैं। जिसमे उत्तरोत्तर अपूर्व ही अपूर्व परिणाम होते जावे अर्थात् भिन्न समयवर्ती जीवो के परिणाम सदा विसदृश ही हो, और एक समयवर्ती जीवो के सदृश हो और विसदृश भी हो उसको अपूर्व करण कहते है। और जिसमे भिन्न समयवर्ती जीवो के परिणाम विसदृश ही हो और एक समयवर्ती जीवो के सदृश ही हो, उसे अनिवृत्तिकरण कहते है। ये तीनो प्रकार के परिणाम उत्तरोत्तर अधिक २ विशुद्ध होते जाते है। इसी से इनमे परस्पर भेद माना गया है। इन तीन करणो के कर चुकने पर सम्यक्त्व होता है।
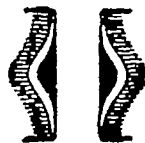
पंच परावर्तन का स्वरूप

भाव परावर्तन अनत भाग भव काल,
भव परावर्तन अनत भाग काल है।
काल परावर्तन अनन्त भाग खेत कह्यौ,
खेत को अनन्त भाग पुग्गल विसाल है ॥
ताकौ आधौ नाम अर्ध पुग्गल परावर्तन,
फिरनौ रह्यौ है याहि ज्ञानी ज्ञान भाल है।
ताही समै सम्यक उपजिवे को जोग भयो,
और कहा समकित लरकौं का ख्याल है ।७६। च०श०

अर्थ—कर्म बधो के करने वाले जितने प्रकार के भाव है, उन सबको मिथ्याती जीव क्रम पूर्वक जितने समय मे अनुभव करता है उतने काल को एक भाव परावर्तन काल कहते है। इस भाव परावर्तन का जितना काल है, उसका अनन्तवा भाग काल भव परावर्तन का है। नरक गति तथा देवगति की जघन्य आयु दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर की, मनुष्य गति तिर्यंच गति की जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट आयु तीन पल्य की है। इन चारो गतियो का जघन्य से लेकर उत्कृष्ट तक, आयु क्रम पूर्वक धारण करने मे आयु के जितने भेद हो सकते हैं, उन सबको यथा क्रम पूर्ण करने मे जितना समय लगता है, उसे एक भव परावर्तन का काल समझना चाहिए (यहा पर यह विशेषता है कि नरक गति मे तो ३३ सागर की उत्कृष्ट आयुष्य ली

जाती है, परन्तु देवगति की उत्कृष्ट न लेकर केवल ३१ सागर तक की लेनी चाहिए। क्योकि नव ग्रैवेयक से ऊपर जो ३१ सागर से अधिक आयुष्य के देव होते है वे सब सम्यग्दृष्टि ही होते हैं और इसी कारण दो सागर के जितने समय होते हैं उतने बार उन्हे फिर ससार मे जन्म धारण करने का प्रसग प्राप्त नही होता) इस भव परावर्तन के काल से अनन्तवा भाग काल कालपरावर्तन का है। बीस कोडा कोडी सागर का एक कल्पकाल होता है। इस काल के जितने समय हैं उन सब समयो मे क्रम से जन्म मरण धारण करने को एक काल परावर्तन कहते हैं। इस काल परावर्तन के काल से अनन्तवा भाग काल क्षेत्र परावर्तन का होता है। क्षेत्र परावर्तन दो प्रकार का है, एक स्वक्षेत्र परावर्तन और दूसरा परक्षेत्र परावर्तन। सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्त की जघन्य अवगाहना घनागुल के असख्यातवे भाग है और महामच्छ की उत्कृष्ट अवगाहना हजार योजन लम्बी, ५०० योजन चौडी और २५० योजन ऊची हैं। सो उक्त जघन्य अवगाहना से लेकर उत्कृष्ट अवगाहना तक क्रम से एक २ प्रदेश अधिक अवगाहना के शरीर को लेकर जन्म मरण करने को एक स्वक्षेत्र परावर्तन कहते हैं। सुमेरु पर्वत की जड के नीचे मध्य के ८ प्रदेश हैं। उन ८ प्रदेशो को अपने शरीर के आठ मध्य प्रदेश बना कर जघन्य अवगाहना को धारण करके उत्पन्न हो तथा उसी अवगाहना को लेकर जितने उसके आत्म प्रदेश हैं उतनी ही बार जन्म मरण करे। इसके बाद उनसे एक एक प्रदेश हट कर क्रम पूर्वक तीन लोक के असख्यात प्रदेशो मे जन्म मरण करने का

नाम एक परक्षेत्र परावर्तन है। स्वक्षेत्र और परक्षेत्र परावर्तन के काल के जोड को एक क्षेत्र परावर्तन के काल का जोड समझना चाहिये। इस क्षेत्र परावर्तन के काल का अनन्तवां भाग काल पुद्गल परावर्तन का है। अनन्त कर्म और नोकर्म पुद्गल परमाणुओ को क्रम पूर्वक एक के बाद एक ग्रहण करके छोडने को एक पुद्गल परावर्तन कहते हैं। इसका दूसरा नाम द्रव्य परावर्तन भी है। पुद्गल परावर्तन के आधे काल को अर्ध पुद्गल परावर्तन कहते हैं। यह जीव ससार मे मिथ्यात्व परिणाम से अनन्त बार अनन्त परावर्तन करता है। जब इसका अर्ध पुद्गल परावर्तन काल बाकी रह जाता है, तब ज्ञानी जानता है कि, इसकी काल लब्धि आ गई है, इसकी योग्यता सम्यक्त्व के उत्पन्न होने की हो गई है। यदि अर्ध पुद्गल परावर्तन से एक समय भी अधिक भ्रमण शेष रहा हो, तो सम्यक्त्व की उत्पत्ति नही हो सकती है। ऐसा नियम है। जिस जीव को सम्यक्त्व हो जाता है, वह अन्तर्मुहूर्त से लेकर अर्ध पुद्गल परावर्तन के काल के भीतर किसी भी समय मे अवश्य मुक्त हो जाता है। इस तरह सम्यक्त्व का पाना बहुत कठिन है। इसको पा लेना कुछ लडको का खेल थोडे ही है। जिनके अनन्तानुबधी क्रोध, मान, माया लोभ और मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व इन सात प्रकृतियो का विनाश हो गया है, अतएव क्षायिक सम्यक्त्व का प्रकाश हो गया है, वे ही जीव इस द्रव्य क्षेत्र काल भव भाव रूप पंच परावर्तनो के चक्कर से निकल पाते हैं।

मरण के ५ भेद

मरण—प्राणो के परित्याग का नाम मरण है अथवा प्रस्तुत आयु से भिन्न अन्य आयु का उदय आने पर पूर्व आयु का विनाश होना मरण है। मरण दो प्रकार का है, नित्य मरण और तद्भव मरण। प्रतिक्षण आयु आदि प्राणो का बराबर क्षय होते रहना नित्य मरण है और नूतन शरीर पर्याय को धारण करने के लिये पूर्व पर्याय का नष्ट होना तद्भव मरण है।

मरण के ५ भेद—पडिद पडिद मरण पडिदय वाल पडिय चेव।
वालमरण चउत्थ, पचमय वालवाल च ।२६।भ आ.।
अर्थात् (१) पडित पडित मरण (२) पडित मरण (३) वाल पडित मरण (४) वाल मरण (५) वाल वाल मरण । ये पाच मरण है।

१ **पंडित पडित मरण**—जिनका ज्ञान, दर्शन, चरित्र और तप मे अतिशय सहित पाडित्य है अर्थात् जो केवलज्ञान के धारक हैं, क्षायिक सम्यग्दृष्टि व यथाख्यात चारित्र और उत्कृष्ट तपश्चरण के आराधक हैं उन केवली भगवान के शरीर त्याग करने को पडित पडित मरण कहते हैं।

२ **पंडित मरण**—जिनका ज्ञान चारित्रादि परम प्रकर्षता को प्राप्त नही हुआ है, ऐसे प्रमत्त संयतादि

छठे गुणस्थान से लेकर बारहवें गुणस्थानवर्ती साधुओ का जो मरण होता है उसे "पंडित मरण" कहते हैं।

३ **बाल पंडित मरण**—संयतासंयत (पंचम गुण-स्थानवर्ती श्रावक) को बाल पंडित कहते हैं। रत्नत्रय मे परिणत होने वाली पंडा (बुद्धि) जिसको प्राप्त हो गई है उसे यहा पंडित माना है। इसलिये श्रावक बाल पंडित कहा गया है। क्योंकि इसमे एक देश रत्नत्रय का आराधन करने और महाव्रत रूप सर्व देश रत्नत्रय का पालन न करने के कारण बालपना और पंडितपना दोनो धर्म पाये जाते है। अत यह बालपंडित उभय रूप है। इसका मरण बाल पंडित मरण माना गया है।

४ **बाल मरण**—असंयत सम्यग्दृष्टि बाल मरण करता है क्योंकि इसके सम्यग्दर्शन और ज्ञान होने पर भी चारित्र नही पाया जाता है।

५ **बाल बाल मरण**—मिथ्यादृष्टि को बाल बाल कहते हैं। क्योंकि इसके सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, चारित्रादि कुछ भी नही होता है। इसलिये यह अतिशय बाल है। इसके मरण को बाल बाल मरण कहते हैं।

इन पाच प्रकार के मरणो मे से आदि के ३ मरण सद्-गति देने वाले है अत जिनेन्द्र देव ने इनकी प्रशसा की है। वही कहा है —

गाथा—पडिद पडिद मरण च पडिद बाल पडिद चेव।
एदाणि तिण्णि मरणाणि जिणा णिच्च पससति ।भ आ.।

अर्थात् पडित पडित मरण, पडित मरण और बाल पडित मरण इन तीनो की जिनेन्द्र देव नित्य प्रशसा करते हैं। बाल मरण चारित्र हीन सम्यग्दृष्टि के होता है। यद्यपि यह उक्त तीन मरणो की अपेक्षा हीन है, किन्तु इसके स्वामी के तत्व श्रद्धान् होता है, इसलिये यह बाल बाल मरण की अपेक्षा श्रेष्ठ है। किन्तु सयम का सर्वथा अभाव होने से इसे प्रशसनीय नही कहा है। मिथ्यादृष्टि के मरण को बाल बाल मरण कहा है, यह मरण ससार के सब एकेन्द्रिय से लेकर मिथ्यादृष्टि समस्त पचेन्द्रियो का होता रहता है। इस जीव ने अनन्त वार यह मरण किया है। आचार्य शिवकोटि कहते हैं —

गाथा—सुविहिय मिम पवयण, असद्दहन्तेणिमेण जीवेण।
वालमरणाणितीदे मदाणिकाले अणताणि ।।२४भ आ.।।

अर्थात् वस्तु का यथार्थ स्वरूप प्रतिपादन करने वाले पूर्वा पर विरोध रहित तथा प्रत्यक्ष अनुमानादि प्रमाणो से अवाधित जिनेन्द्रदेव कथितआगम का श्रद्धान न करके इस जीव ने पहले अनन्त वार वाल वाल मरण किये हैं पर

पडित मरण का एक बार भी सुअवसर प्राप्त नही हुआ। यदि एक बार भी पडित मरण हो जाता तो अधिक से अधिक सात आठ भव धारण करने के पश्चात् यह आत्मा इस जन्म मरण के दु ख से सदा के लिये छूट जाता । अत ऐसा अवसर प्राप्त होने पर अपने आपको या दूसरो को यो समझना चाहिये कि हे आत्मन् बडी कठिनता से महान् पुण्य कर्म उदय से यह अनुपम स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ है। इसलिये परमागम की श्रद्धा मे दृढ रहो और अपने चारित्र को निर्मल बनाओ । क्योकि मनुष्य जन्म का पाना और अनुकूल साधनो का योग पाकर सयम का आराधन करना उत्तम कार्यों मे शिरोमणि है। इस सयम के लिए उत्कृष्ट सासारिक सुख के स्वामी सर्वार्थ-सिद्धि के देव भी तरसते है। अत सम्यक्त्व की रक्षा करते हुए सयम का निरतिचार पालन कर आत्मा को इस ससार के रोमाचकारी दु खो से मुक्त करने के लिए 'पडित मरण'' से शरीर का त्याग करो । पडित मरण का फल केवलज्ञान प्राप्त करना है। श्री भगवती आराधना मे मरण के १७ भेद बताये हैं इनकी जानकारी के लिए इस शास्त्र का स्वाध्याय करना चाहिये ।

सल्लेखना

अच्छे प्रकार से काय और कषाय का लेखन करना अर्थात् कृश करना सल्लेखना है ।

भेद—सल्लेहणा य दुविहा अभ्यतरिया य बाहिरा चेव ।
अब्भतरा कसायेसु, बाहिरा होदि हु सरीरे ॥२०६॥(भ आ)

सल्लेखना दो प्रकार की है, अभ्यतर और बाह्य । तहा अभ्यतर सल्लेखना तो कषायो मे होती है और बाह्य सल्लेखना शरीर मे । अर्थात् कषायो को कृश करना तो अभ्यन्तर सल्लेखना है और शरीर को कृश करना बाह्य सल्लेखना है । जो साधु कषायो को कृश न करके केवल शरीर को ही कृश करता है उसका वह शरीर को कृश करना निष्फल है । क्योकि कषायो को कृश करने के लिए ही शरीर को कृश किया जाता है, केवल शरीर को कृश करने के लिये नही ।

अवसर—वृक्ष के पके हुए पत्तो की तरह या तेल रहित दीपक की तरह शरीर को स्वय ही विनाशोन्मुख जानकर अन्तिम विधि (समाधि मरण) करना चाहिए, किन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि शरीर को त्याग देना कठिन नही है किन्तु उसमे सयम का धारण करना कठिन है । अत यदि शरीर ठहरने योग्य हो तो उसे नष्ट नही करना चाहिए और यदि वह नष्ट होता हो तो उसका रंज नही

करना चाहिए। जब शरीर की शक्ति प्रतिदिन घटने लगे, खाना पीना छूट जाये और कोई उपाय कारगर न हो तो स्वय शरीर ही मनुष्य को बतला देता है कि अब समाधि मरण करने का समय आ गया है। अत बुढापा आने पर आत्म कल्याण मे लगना ही हितकर है क्योकि उसके बाद मौत के मुह मे जाना सुनिश्चित है।

अत. स्वकाल पाक द्वारा अथवा उपसर्ग द्वारा निश्चित रूप से आयु का क्षय सम्मुख होने पर यथा विधि रूप से समाधि मरण धार कर सकल क्रियाओ को सफल करना चाहिए।

आवश्यकता—मरण के समय धर्मानुष्ठान रूप परिणाम न होकर यदि धर्म की विराधना हो जाती है तो उससे दुर्गति मे जाना पडता है। भगवती आराधना मे कहा भी है कि :—

गाथा—सुचिरमवि णिरदि चार विहरित्ता णाण दसण चरित्ते।
मरणे विराधयित्ता अनत ससारिओदिट्ठो ॥१५॥

अर्थात् दर्शन ज्ञान चारित्र रूप धर्म मे चिरकाल तक निरतिचार प्रवृत्ति करने वाला मनुष्य भी यदि मरण के समय उस धर्म की विराधना कर बैठता है तो वह अनन्त ससारी तक हो जाता है इससे स्पष्ट है कि अन्त समय मे धर्म परिणामो की सावधानी न रखने से यदि मरण विगड जाता है तो प्राय: सारे ही किये कराये पर पानी फिर जाता है। इसी से अन्त समय में परिणामो को

संभालने के लिये बहुत बडी सावधानी रखने की जरूरत है अंत जितनी भी अपनी शक्ति हो उसके अनुसार समाधि पूर्वक मरण का पूरा प्रयत्न करना चाहिये । श्री पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय मे कहा है कि —

श्लोक—इय मेकैव समर्था धर्मस्वं मे मया समं नेतुम् ।
सतत मिति भावनीया पश्चिम सल्लेखना भक्त्या ॥१७५॥

अर्थात् यह एक ही सल्लेखना मेरे धर्म रूपी धन को साथ ले चलने को समर्थ है इसप्रकार भक्ति पूर्वक अन्तिम मरण समय होने वाली सल्लेखना निरन्तर भानी चाहिये ।

मृत्यु का संशय या निश्चय होने की अपेक्षा भक्त प्रत्याख्यान विधि.—जीवित मे सन्देह होने की अवस्था मे ऐसा विचार करे कि इस देश मे इस काल मे मेरा जीने का सद्भाव रहेगा तो ऐसा त्याग है कि जब तक उपसर्ग रहेगा, तब तक आहारादिक का त्याग है उपसर्ग दूर होने के पश्चात् यदि जीवित रहा तो फिर पारणा करूंगा । (पर जहाँ निश्चय हो जाय कि इस उपसर्गादि मे मैं नही जी सकूंगा । वहा ऐसा त्याग करे) मैं जल को छोड अन्य तीन प्रकार के आहार का त्याग करता हू । बाह्य और अभ्यन्तर दोनो प्रकार के परिग्रह को तथा मन, वचन काय की पाप क्रियाओ को छोडता हू । जो कुछ मेरे अभ्यन्तर बाह्य परिग्रह है उसे तथा चारो प्रकार के आहारो को और

अपने शरीर को यावज्जीवन छोडता हू। यही उत्तमार्थ त्याग है। (मूलाचार ११२ से ११४)

भव धारण की सीमा —

एक्कम्मि भवग्गहणे, समाधिमरणेण जो मदो जीवो।
णहु सो हिडदि बहुसो सत्तट्ठ भवे पमोत्तूण।६८२ मू आ।

अर्थात् जो यति एक भव मे समाधि मरण से मरण करता है वह अनेक भव धारण कर ससार मे भ्रमण नही करता। उसको सात आठ भव धारण करने के पश्चात् अवश्य मोक्ष की प्राप्ति होगी।

सल्लेखना का स्वरूप, विधि व फल

(रत्नकरंड श्रावकाचार से)

सल्लेखना का स्वरूप और वह कब की जाती है —

श्लोक—उपसर्गे दुर्भिक्षे, जरसि रुजाया च नि प्रतीकारे।
धर्माय तनुविमोचन माहु सल्लेखना मार्याः ॥१॥

अर्थ:—महात्मा पुरुष, जिसका कुछ प्रतीकार या इलाज न किया जा सके ऐसे किसी भयकर सिंह आदि द्वारा खाये जाने आदि के उपसर्ग आ जाने पर, जिसमे शुद्ध भोजन सामग्री न मिल सके ऐसे दुष्काल के पड जाने पर जिसमे धार्मिक व शारीरिक क्रियाये यथोचित रीति से न पल सके ऐसे

बुढापे के आ जाने पर धर्म की रक्षा के लिये शरीर के त्याग करने को व यथा शक्ति कषायो के मन्द करने को सल्लेखना या समाधिमरण कहते हैं।

आगे के श्लोको मे बताये हुए कारणो से इस मृत्यु अवस्था को दुखदायक न समझ कर एक प्रकार का उत्सव या महोत्सव समझना चाहिये, क्योकि यह समय आयु पर्यन्त अभ्यास किये हुए ज्ञान, ध्यान, जप, तप आदि शुभ कार्यों की परीक्षा का है। वीर पुरुष बहुत काल तक शस्त्र विद्या का अभ्यास कर युद्ध मे जाते समय जैसे हर्ष मानता है और मरने का भय नही करता, उसी तरह इस ज्ञानी पुरुष को भी मृत्यु समय मे कुटुम्बियो आदि से व शरीर से मोह त्यागने मे वीरता व साहस दिखाना चाहिये।

तप के फलस्वरूप समाधिमरण के लिए प्रयत्न।

श्लोक—अत· क्रियाधिकरण, तप फल सकल दर्शिन. स्तुवते।
तस्माद्यावद्विभव, समाधिमरणे प्रयतितव्यम् ॥२॥

अर्थ—आयु पर्यन्त किये हुए तप का फल श्री अरहन्त देव ने अन्त समय मे होने वाला समाधिमरण कहा है इसलिये अपनी सम्पूर्ण शक्ति को लगाकर समाधि मरण करने मे प्रयत्न करना चाहिये। जैसे बहुत काल तक शास्त्राभ्यास करके भी परीक्षा के समय अनुत्तीर्ण हो जाने वाला छात्र प्रशसा का पात्र नही होता अथवा जैसे युद्ध मे हार जाने

वाले सिपाही की कोई बडाई नही करता उसी तरह आयु पर्यन्त तप करके भी जो पुरुष मरण समय मे शरीर के या सम्बन्धियो के मोह मे विह्वल हो जाते है उनका तप या ज्ञानादिक पाना प्रशसनीय नही कहा जा सकता। इसलिए अन्त समय मे शरीर को कारागृह और सबन्धियो को पहरेदार के समान समझकर दोनो से प्रेम त्यागना चाहिये क्योकि तप, ज्ञान, ध्यान आदि उत्तम कार्यों के करने से परलोकमे मिलने वाली जो उत्तम विभूति है उसके शीघ्र प्राप्त होने मे शरीर व सम्बन्धी बाधक होते हैं।

समाधिमरण के समय का कर्तव्य :—

श्लोक—स्नेह वैर सग, परिग्रह चापहाय शुद्ध मना॰।
स्वजन परिजन मपि च, क्षात्वा क्षमयेत् प्रियैर्वचनैः ॥३।

अर्थ—समाधि मरण के समय शुद्ध मन पूर्वक मित्रो से प्रेम शत्रुओ से वैर व स्त्री पुत्रादिक से पति पिता आदि का सम्बन्ध त्याग कर और सर्व प्रकार के चेतन अचेतन परिग्रह से अर्थात गाय, भैस, दासी, दास, रुपये पैसे, घर वार आदि से स्वामीपने की बुद्धि का त्याग करके सम्पूर्ण कुटुम्बियो व अन्य मेल मिलापी जनो से मिष्ट वचनो द्वारा क्षमा करानी चाहिए और स्वय भी सबसे क्षमा भाव धारण करे।

गृहवास को सराय मे किए हुए पडाव के समान या एक वृक्ष पर किये हुए पक्षियो के बसेरे के समान समझ

कर अपने को अकेला ही समझना चाहिए। मुसाफिर खाने की भीड को भाई, बन्धु, ताऊ, चाचा, पुत्र, मित्र आदि समझ कर आकुलित होने से इस जीव का कोई भी लाभ नही होता है। इसलिए उक्त विचारो के द्वारा सब से मोह त्याग कर आनन्द पूर्वक इस जीर्ण-शीर्ण, दुर्गन्धमय व रोगग्रसित शरीर से कूच करने के लिए तैयारी करना चाहिये।

मृत्यु महोत्सव की तैयारी

श्लोक—आलोच्य सर्व मेन' कृत कारित मनुमत च निर्व्याजिम्।
आरोपयेन्महाव्रत मा मरणस्थायि नि:शेषम् ॥ ४ ॥

अर्थ—मन वचन काय व कृत कारित अनुमोदना से सचय किये हुए समस्त पाप कार्यों की आलोचना करके मरण पर्यन्त के लिए बिना छल कपट के समस्त महाव्रतो को धारण करना चाहिए।

श्लोक—शोक भयमवसाद क्लेद कालुष्य मरति मपि हित्वा।
सत्वोत्साह मुदीर्य च मन प्रसाद्य श्रु तैरमृते ॥ ५ ॥

अर्थ—समाधि मरण के समय कायरपने को व दु:ख के कारण भूत शोक, भय खेद, ग्लानि, कलुषता, अरति आदि को त्याग कर अपने पराक्रम और उत्साह को पूर्ण रूप से प्रकट करना चाहिए साथ ही अमृतोपम शास्त्र वचनो का रसास्वाद करते रहना चाहिए।

समाधिमरण की विधि

श्लोक—आहार परिहाप्य क्रमश स्निग्ध विवर्द्धयेत्पानम् ।
स्निग्धं च हापयित्वा खरपानं पूरयेत् क्रमश ॥ ६ ॥
खरपानं हापनामपि कृत्वा कृत्वोपवासमपि शक्त्या ।
पच नमस्कारमनास्तनु त्यजेत्सर्वयत्नेन ॥ ७ ॥

अर्थ—समाधिमरण करते समय शरीर से ममत्व घटाने के लिए क्रम से पहले आहार का त्याग करके दुग्ध पान का अभ्यास करना चाहिए पश्चात् दुग्ध का भी त्याग करके छांछ या गर्म जल के पीने का अभ्यास करना चाहिए, बाद मे शक्ति पूर्वक जलादिक सभी वस्तुओ का त्याग करके उपवास करते हुए तथा सर्व यत्न से पच परमेष्ठी के गुणो का ध्यान करते हुए शरीर को छोडना चाहिए।

सल्लेखना के अतिचार

श्लोक—जीवित मरणाशसे भय मित्र स्मृतिनिदान नामान ।
सल्लेखनातिचारा पच जिनेन्द्रै समादिष्टा ॥ ८ ॥

अर्थ—जीने की अभिलाषा, मरने की अभिलाषा, भय, मित्रो की स्मृति और भावी भोगादिक की अभिलाषा रूप निदान, ये सल्लेखना व्रत के पाच अतिचार जैन तीर्थकरो ने आगम मे बतलाये हैं।

जो लोग सल्लेखना व्रत को अगीकार कर पीछे

अपनी कुछ इच्छाओ की पूर्ति के लिए अधिक जीना चाहते हैं या उपसर्गादि की वेदनाओ को समभाव से सहने मे कायर होकर जल्दीमरना चाहते है वे अपने सल्लेखना व्रत को दोष लगाते है। इसी तरह वे भी अपने उस व्रत को दूषित करते हैं जो किसी प्रकार के भय तथा मित्रादि का स्मरण कर अपने चित्त मे उद्वेग लाते हैं अथवा अपने इस व्रतादि के फल रूप मे कोई प्रकार का निदान बाधते हैं। अत. सल्लेखना के फल को प्राप्त करने के लिए इन पाचो दोषो मे से किसी भी दोष को अपने पास नही फटकने देना चाहिए।

धर्मानुष्ठानफल

श्लोक—नि:श्रेय समभ्युदय निस्तीर दुस्तर सुखाम्बुनिधिम्।
नि पिवति पीतधर्मा सर्वैर्दु खैरनालीढ. ॥ ६ ॥

अर्थ—जिसने धर्मामृत का पान किया है सम्यग्दर्शन, सम्यक्-ज्ञान, सम्यक्चारित्र का सल्लेखना सहित भले प्रकार अनुष्ठान किया है वह सब दु.खो से रहित होता हुआ उस नि श्रेयस रूप सुख समुद्र का अनुभव करता है जिसका तीर नही, तट नही, पार नही, इसलिए जो अनन्त है और उस अभ्युदय रूप सुख समुद्र का भी अनुभव करता है जो दुस्तर है जिसको तिरना, उल्लघन करना कठिन है और इसलिए जो प्राप्त करके सहज मे

ही छोडा नही जा सकता। अर्थात् स्वर्ग का महर्द्धिक-पना असख्यातकाल पर्यन्त भोगकर फिर मनुष्यो मे उत्तम राज्यादिक वैभव पाय फिर ससार देह भोग से विरक्त होकर शुद्ध सयम अ गीकार कर ऐसे निर्वाण पद को प्राप्त करता है, जो जन्म, जरा, रोग, मरण, शोक, दु ख भय और राग द्वेष काम क्रोधादि से रहित, सदा स्थिर रहने वाला व शुद्ध सुख स्वरूप है।

सल्लेखना आत्म हत्या नहीं है।

प्रश्न—क्योंकि सल्लेखना मे अपने अभिप्राय से आयु आदि का त्याग किया जाता है इसलिए यह आत्म-घात हुआ ?

उत्तर—यह कोई दोष नही है। क्योकि सल्लेखनामे प्रमादका अभाव है। प्रमत्त योग से प्राणो का वध-करना हिंसा है परन्तु इसके प्रमाद नही है क्योकि इसके रागादिक नही पाये जाते। रागद्वेष और मोह से युक्त होकर जो विष और शस्त्र आदि उपकरणो का प्रयोग करके उनसे अपना घात करता है उसे आत्म घात का दोष प्राप्त होता है। सल्लेखना व्रत तभी लिया जाता है जब लेने वाला अन्य कारणो से निकट भविष्य मे अपने जीवन का अन्त समझ लेता है। जैसे व्यापारी अपने माल की हर प्रकार से रक्षा करता है और उसके विनाश के कारण उपस्थित हो जाने पर वह उनको दूर करने का प्रयत्न करता है। इतने पर भी यदि वह सबकी रक्षा करने मे अपने को

असमर्थ पाता है तो उसमे जो वहुमूल्य वस्तु होती हे उसकी सर्व प्रथम रक्षा करता है इसी प्रकार ग्रहस्थ भी व्रत और शील के समुचित रीति से पालन करने के लिए शरीर का नाश नही करना चाहता किन्तु शरीर के विनाश के कारण उपस्थित हो जाने पर वह उनको दूर करने के प्रयत्न करता है इतने पर भी यदि वह देखता है कि मैं शरीर की रक्षा नही कर सकता, तो वह अपने आत्मा की उत्तम प्रकार से रक्षा करते हुए अर्थात् आत्मा को राग द्वेष और मोह से बचाते हुए शरीर का त्याग करता है इसलिए इसे आत्म घात का दोष प्राप्त नही होता है।

श्लोक—मरणेवश्य भाविनि कषाय सल्लेखना तनुकरण मात्रे।
रागादि मन्तरेण व्याप्रियमाणस्य नात्मघातोस्ति ॥१७७॥
यो हि कषायाविष्ट कुम्भकजलधूमकेतुविषशस्त्रै ।
व्यपरोपयति प्राणान् तस्य स्यात्सत्यमात्म वध ॥१७८॥
॥ पु० सि० उ० ॥

अर्थात् मरण के निश्चित रूप से आजाने पर कषायो को कृश करके कम करने मात्र, व्यापार मे प्रवर्तमान श्रावक के रागादि भावो के बिना आत्म घात नही है। जो कोई वास्तव मे क्रोधादि कषायो से आवेष्टित होकर श्वास निरोध, जल, अग्नि, विष, शस्त्र आदिको से अपने प्राणो को नष्ट करता है, उसके आत्म घात अवश्य होता है। अत सल्लेखना आत्म हत्या नही है।

मृत्यु महोत्सव पाठ

(प. सूरचन्दजी रचित)

वदौं श्री अरहत परमगुरु, जो सबको सुखदाई।
इस जग मे दुख जो मैं भुगते, सो तुम जानो राई।।
अब मैं अरज करू प्रभु तुमसे, कर समाधि उरमाही।
अन्त समय मे यह वर मागू, सो दीजै जगराई।। १ ।।

भव भव मे तन धार नये मैं, भव भव शुभ सग पायो।
भव भव मे नृप रिद्धि लई मैं, मात पिता सुत थायो।।
भव भव मे तन पुरुष तनो घर, नारी हू तन लीनो।
भव भव मे मैं भयो नपु सक, आतम गुण नहिं चीनो।।२।।

भव भव मे सुर पदवी पाई, ताके सुख अति भोगे।
भव भव मे गति नरक तनी घर, दुख पाए विधि योगे।।
भव भव मे तिर्यंच योनि धर, पायो दुख अति भारी।
भव भव मे साधर्मी जन को, सग मिल्यो हितकारी।।३।।

भव भव मे जिन पूजन कीनी, दान सुपात्रहिं दीनो।
भव भव मे मैं समवशरण मे, देख्यो जिन गुण भीनो।।
एती वस्तु मिली भव भव मे, सम्यक गुण नहिं पायो।
ना समाधियुत मरण कियो मैं, ताते जग भरमायो।।४।।

काल अनादि भयो जग भ्रमते, सदा कुमरणहिं कीनो।
एक बार हू सम्यकयुत मैं, निज आतम नहिं चीनो।।

जो निज पर को ज्ञान होय तो, मरण समय दुख काई ।
देह विनासी मैं निज भासी, शात स्वरूप सदाई ।।५।।
विषय कषायनि के वश हो कर, देह आपनो जान्यो ।
कर मिथ्या सरधान हिए विच, आतम नाहि पिछान्यो ।।
यो कलेश हियधार मरण कर, चारो गति भरमायो ।
सम्यक दर्शन ज्ञान चरन ये, हिरदे मे नहिं लायो ।।६।।
अब या अरज करु प्रभु सुनिये, मरण समय यह मागो ।
रोग जनित पीडा मत होवो, अरु कषाय मत जागो ।।
ये मुझ मरण समय दुखदाता, इन हर साता कीजै ।
जो समाधियुत मरण होय मुझ, अरु मिथ्या गद छीजै ।।७।।

यह तन सात कुधात मई है, देखत ही घिन आवै ।
चर्म लपेटी ऊपर सोहै भीतर विष्टा पावै ।।
अति दुर्गन्ध अपावन सो यह मूरख प्रीति बढावै ।।
देह विनासी जिय अविनासी, नित्य स्वरूप कहावै ।।८।।

यह तन जीर्ण कुटी सम आतम, यातै प्रीति न कीजै ।
नूतन महल मिलै जब भाई, तब यामैं क्या छीजै ।।
मृत्यु होनसे हानि कौन है, याको भय मत लावो ।
समता से जो देह तजोगे, तो शुभतन तुम पावो ।।९।।

मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, इस अवसर के माही ।
जीरन तन से देत नयो यह, या सम साहू नाही ।।
या सेती इस मृत्यु समय पर, उत्सव अति ही कीजै ।
क्लेशभाव को त्याग सयाने, समता भाव धरीजै ।।१०।।

जो तुम पूरव पुण्य किए हैं, तिनको फल सुखदाई।
मृत्यु मित्र विन कौन दिखावै, स्वर्ग सपदा भाई ॥
राग रोष को छोड सयाने, सात व्यसन दुखदाई।
अत समय मे समता धारो पर भव पथ सहाई ।११॥

कर्म महा दुठ बैरी मेरो, ता सेती दुख पावै।
तन पिजर मे बद कियो मोहि, या सो कौन छुडावै ॥
भूखतृषा दुख आदि अनेकन, इस ही तन मे गाढै।
मृत्युराय अब आय दयाकर, तन पिंजर सौं काढै ॥१२॥
नाना वस्त्राभूषण मैंने, इस तन को पहराये।
गध सुगधित अतर लगाये, षट रस असन कराये ॥
रात दिना मैं दास होयकर, सेव करी तन केरी।
सो तन मेरे काम न आयो, भूल रह्यो निधि मेरी ॥१३॥
मृत्युराय को शरन पाय तन, नूतन ऐसो पाऊ।
जामैं सम्यक रतन तीन लहि आठो कर्म खपाऊ॥
देखो तन सम और कृतघ्नी, नाहि सु या जग माही।
मृत्यु समय मे ये ही परिजन, सब ही हैं दुखदाई ॥१४॥
यह सब मोह बढावन हारे, जिय को दुर्गति दाता।
इनसे ममत निवारो जियरा, जो चाहो सुख साता ॥
मृत्यु कल्पद्रुम पाय सयाने, मागो इच्छा जेती।
समता धर कर मृत्यु करो तो, पावो सपति तेती ॥१५॥
चौ आराधन सहित प्राण तज, तौ ते पदवी पावो।
हरि प्रतिहरि चक्री तीर्थेश्वर, स्वर्ग मुकति मे जावो ॥

मृत्यु कल्पद्रुम सम नहिं दाता, तीनो लोक मझारे ।
ताको पाय कलेश करो मत, जन्म जवाहर हारे ॥१६॥
इस तन मे क्या राचै जियरा, दिन-दिन जीरन हो है ।
तेज काति बल नित्य घटत है, या सम अथिर सु को है ।
पाचो इन्द्री शिथिल भई अब, स्वास शुद्ध नहिं आवै ।
तापर भी ममता नहिं छोडै, समता उर नहिं लावै ॥१७॥
मृत्युराज उपकारी जिय को, तन सो तोहि छुडावै ।
ना तर या तन बदी गृह मे परचो परचो विललावै ॥
पुद्गल के परमाणू मिल कर, पिंड रूप तन भासी ।
याही मूरत मैं अमूरती, ज्ञान जोति गुण खासी ॥१८॥
रोग शोक आदिक जो वेदन, ते सब पुद्गल लारै ।
मैं तो चेतन व्याधि बिना नित, है सो भाव हमारे ॥
या तन सो इस छेत्र सबन्धी, कारण आन बन्यो है ।
खान पान दे या को पोष्यो, अब सम भाव ठन्यो है ॥१९॥
मिथ्या दर्शन आतम ज्ञान बिन, यह तन अपनो जान्यो ।
इन्द्री भोग गिने सुख मैंने, आपो नाहिं पिछान्यो ॥
तन विनशन तें नाश जानि निज, यह अयान दुखदाई ।
कुटुम आदि को अपनो जान्यो, भूल अनादी छाई ॥२०॥
अब निज भेद जथारथ समझो, मैं हूं ज्योति स्वरूपी ।
उपजै विनसै सो यह पुद्गल, जान्यो याको रूपी ॥
इष्ट निष्ट जेते सुख दुख हैं, सो सब पुद्गल सागै ।
मैं जब अपनो रूप विचारो, तब वे सब दुख भागै ॥२१॥

बिन समता तन नंत धरे मैं, तिनमे ये दुख पायो ।
शस्त्र घात ते नन्तबार मर, नाना योनि भ्रमायो ।
बार अनन्तहि अग्नि माहि जर, मूवो सुमति न लायो ।
सिंह व्याघ्र अहि नन्त बार मुझ, नाना दु ख दिखायो ।।२२।।

विन समाधि ये दु ख लहे मैं, अब उर समता आई ।
मृत्युराज को भय नहि मानो, देवे तन सुखदाई ।।
याते जब लग मृत्यु न आवं, तब लग जप तप कीजे ।
जप तप बिन इस जग के माही, कोई भी न सीजै ।।२३।।

स्वर्ग संपदा तप सो पावै, तप सो कर्म नसावै ।
तप ही सो शिव कामिनि पति ह्वै यासो तप चित लावै ।।
अब मैं जानी समता बिन मुझ, कोऊ नाहि सहाई ।
मात पिता सुत बाधव तिरिया, ये सब हैं दुखदाई ।।२४।।

मृत्यु समय मे मोह करे ये, तातें आरत हो है ।
आरत तें गति नीची पावै, यो लख मोह तज्यो है ।।
और परिग्रह जेते जग मे, तिनसो प्रीत न कीजै ।
पर भव मे ये सग न चाले, नाहक आरत कीजै ।।२५।।

जे जे वस्तु लखत हैं ते पर, तिनसो नेह निवारो ।
पर गति मे ये साथ न चाले, ऐसे भाव विचारो ।।
जो परभव मे सग चलै तुझ, तिन सो प्रीत सु कीजे ।
पच पाप तज समता धारो, दान चार विध दीजे ।।२६।।

दश लक्षण मय धर्म धरो उर, अनुकपा उर लावो ।
षोडश कारण नित्य विचारो, द्वादश भावन भावो ।।

चारो परवी प्रोषध कीजै, अशन रात को त्यागो।
समता धर दुरभाव निवारो, सयम सो अनुरागो ।।२७।।
अन्त समय मे यह शुभ भावहि, होवैं आनि सहाई।
स्वर्ग मोक्ष फल तोहि दिखावे, ऋद्धि देहि अधिकाई ।।
खोटे भाव सकल जिय त्यागो, उर मे समता लाकै।
जा सेती गति चार दूर कर, वसहु मोक्ष पुर जाके ।।२८।।
मन थिरता करके तुम चितो, चौ आराधन भाई।
ये ही तोको सुख की दाता, और हितू कोउ नाही ।।
आगे वहु मुनिराज भये हैं, तिन गहि थिरता भारी।
वहु उपसर्ग सहे शुभ पावन, आराधन उर धारी ।।२६।।
तिनमे कछु इक नाम कहू मैं, सो सुन जिय चित लाकै।
भाव सहित वदे यदि तासो, दुर्गति होय न ताके ।।
अरु समता निज उर मे आवै, भाव अधीरज जावै।
यो निश दिन जो उन मुनिवर को, ध्यान हिये विच लावै।३०।
धन्य धन्य सुकुमाल महामुनि, कैसे धीरज धारी।
एक श्यालनी जुग बच्चा जुत, पाव भख्यो दुखकारी ।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दु ख है, मृत्यु महोत्सव भारी ।।३१।।
धन्य धन्य जु सुकौशल स्वामी, व्याघ्री ने तन खायो।
तो भी श्री मुनि नेक डिगे नहि, आतम सो हित लायो ।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दु:ख है, मृत्यु महोत्सव भारी ।।३२।।

देखो गज मुनि के सिर ऊपर, विप्र अगिनि बहुबारी।
शीश जलै जिम लकडी तिनको, तौ भी नाहिं चिगारी ।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु महोत्सव भारी ।।३३।।

सनतकुमार मुनी के तन मे, कुष्ट वेदना व्यापी।
छिन्न भिन्न तन तासो हूवो, तब चिंत्यो गुण आपी ।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दु ख है, मृत्यु महोत्सव भारी ।।३४।।

श्रेणिक सुत गगा मे डूबो, तब जिन नाम चितारयो।
धर सलेखना परिग्रह छोडयो, शुद्ध भाव उर धारयो ।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दु ख है, मृत्यु महोत्सव भारी ।।३५।।

समतभद्र मुनिवर के तन मे, क्षुधा वेदना आई।
तौ दुख मे मुनि नेक न डिगियो, चिंत्यौ निजगुण भाई ।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दु ख है, मृत्यु महोत्सव भारी ।।३६।।

ललित घटादिक तीस दोय मुनि, कौशाम्बी तट जानो।
नदी मे मुनि बह कर मूवे, सो दुख उन नहिं मानो ।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दु ख है, मृत्यु महोत्सव भारी ।।३७।।

धर्म घोष मुनि चपानगरी, बाह्य ध्यान धर ठाडो।
एक मास की कर मर्यादा, तृषा दुःख सह गाढो ।।

यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दु ख है, मृत्यु महोत्सव भारी ॥३८॥
श्रीदत मुनि को पूर्व जन्म को, वैरी देव सु आके।
विक्रिय कर दुख शीत तनो सो, सह्यो साधु मन लाके ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दु ख है, मृत्यु महोत्सव भारी ॥३९॥
वृषभसेन मुनि उष्ण शिलापर, ध्यान धरयो मनलाई।
सूर्यधाम अरु उष्ण पवन की, वेदन सही अधिकाई ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दु.ख है, मृत्यु महोत्सव भारी ॥४०॥
अभय घोष मुनि काकदीपुर, महा वेदना पाई।
वैरी चड ने सब तन छेद्यो, दुख दीनो अधिकाई ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दु ख है, मृत्यु महोत्सव भारी ॥४१॥
विद्युतचर ने बहु दुख पायो, तो भी धीर न त्यागी।
शुभ भावन सो प्राण तजे निज, धन्य और बडभागी ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दु.ख है, मृत्यु महोत्सव भारी ॥४२॥
पुत्र चिलाती नामा मुनि को, वैरी ने तन घाता।
मोटे मोटे कीट पडे तन, ता पर निजगुण राता ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु महोत्सव भारी ॥४३॥

दडक नाम मुनि की देही, बाणन कर अरिभेदी ।
ता पर नेक डिगे नहिं वे मुनि, कर्म महारिपुछेदी ।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी ।
तो तुमरे जिय कौन दुख है, मृत्यु महोत्सव भारी ।।४४।।
अभिनदन मुनि आदि पाचसो, घानी पेलि जु मारे ।
तो भी श्री मुनि समताधारी, पूरब कर्म विचारे ।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी ।
तो तुमरे जिय कौन दुख है, मृत्यु महोत्सव भारी ।।४५।।
चाणक मुनि गौघर के माही, मूद अगिनि परजाल्यो ।
श्री गुरु उर समभाव धारकै, अपनो रूप सम्हाल्यो ।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी ।
तो तुमरे जिय कौन दुख है, मृत्यु महोत्सव भारी ।।४६।।
सात शतक मुनिवर दुख पायो, हथनापुर मे जानो ।
बलि ब्राह्मण कृत घोर उपद्रव, सो मुनिवर नहिं मानो ।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी ।
तो तुमरे जिय कौन दु:ख है, मृत्यु महोत्सव भारी ।।४७।।
लोहमयी आभूषण घड के, ताते कर पहराये ।
पाचो पाडव मुनि के तन मे, तौ भी नाहिं चिगाये ।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी ।
तो तुमरे जिय कौन दुख है, मृत्यु महोत्सव भारी ।।४८।।
और अनेक भये इस जग में, समता रस के स्वादी ।
वे ही हमको हो सुखदाता, हर है टेव प्रमादी ।।

सम्यक दर्शनज्ञान चरन तप, ये आराधन चारो।
ये ही मोको सुख की दाता, इन्हे सदा उर धारो ॥४६॥

यो समाधि उर माही लावो, अपनो हित जो चाहो।
तज ममता अरु आठो मद को, जोति स्वरूपी ध्यावो ॥

जो कोई नित करत पयानो, ग्रामांतर के काजै।
सो भी शकुन विचारै नीके, शुभ के कारण साजै ॥५०॥

मात पितादिक सर्व कुटुम सब, नीके शकुन बनावै।
हल्दी धनिया पुंगी अक्षत, दूब दही फल लावै ॥

एक ग्राम जाने के कारण, करै शुभाशुभ सारे।
जब परगति को करत पयानो, तब नहिं सोचो प्यारे ॥५१॥

सर्व कुटुम जब रोवन लागै, तोहि रुलावै सारे।
ये अपशकुन करै सुन तोको, तू यो क्यो न विचारै ॥

अब पर गति को चालत बिरिया, धर्मध्यान उर आनो।
चारो आराधन आराधो, मोह तनो दुख हानो ॥५२॥

होय निःशल्य तजो सब दुविधा आतमराम सु ध्यावो।
जब पर गति को करहु पयानो, परम तत्त्व उर लावो ॥

मोह जाल को काट पियारे, अपनो रूप विचारो।
मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, यो उर निश्चय धारो ॥५३॥

दोहा—मृत्यु महोत्सव पाठको, पढो सुनो बुधिवान।
सरधा धर नित सुख लहो, सूरचन्द शिवथान ॥५४॥

पच उभय नव एक नभ, सवत मो सुखदाय ।
आश्विन श्यामा सप्तमी, कह्यो पाठ मन लाय ॥५५॥

बीमार कौन है

जिनका क्रोधी तुच्छ स्वभाव, जिनका हिंसा लिप्त स्वभाव ।
जिनका पर निन्दा मे चाव जिनका रग विरगा भाव ।
कपटी कुटिल जुआरी जार, उनको जानो है बीमार ॥१॥
हृदय जिनके स्नेह विहीन, जिनके मानस धर्म विहीन ।
जिनका मन इन्द्रिय-आधीन, जो हैं काम सरोवर मीन ।
जिनके एक स्वार्थ ससार, उनको जानो है बीमार ॥२॥

महावीराष्टक स्तोत्र

(श्री भागचन्दजी)

यदीये चैतन्ये, मुकुर इव भावाश्चिदचित ।
सम भाति ध्रौव्य, व्ययजनिलसतोन्तरहिता ॥
जगत्साक्षी मार्ग, प्रकटनपरो भानुरिव यो ।
महावीर स्वामी, नयन पथ गामी भवतु मे ॥१॥
अताम्र यच्चक्षु, कमलयुगल स्पन्दरहितम् ।
जनान्कोपापायं, प्रकटयति वाभ्यन्तरमपि ॥
स्फुट मूर्तियस्य, प्रशमितमयी वातिविमला ।
महावीर स्वामी, नयन पथगामी भवतु मे ॥ २ ॥

नमन्नाकेन्द्राली, मुकुटमणि भाजाल जटिल ।
लसत्पादाम्भोजद्वयमिह यदीय तनुभृताम् ॥
भवज्वाला शान्त्यै, प्रभवति जल वा स्मृतमपि ।
महावीर स्वामी, नयन पथगामी भवतु मे ॥ ३ ॥

यदर्च्चा भावेन, प्रमुदितमना दर्दुर इह ।
क्षणादासीत्स्वर्गी, गुणगणसमृद्ध सुखनिधि ॥
लभन्ते सद्भक्ता., शिव सुख समाज किमुतदा ।
महावीर स्वामी, नयन पथगामी भवतु मे ॥ ४ ॥

कनत्स्वर्णाभासोप्यपगत तनुर्ज्ञान निवहो ।
विचित्रात्माप्येको, नृपति वर सिद्धार्थ तनय ॥
अजन्मापि श्रीमान्, विगत भव रागोद्भुतगति ।
महावीर स्वामी, नयन पथगामी भवतु मे ॥ ५ ॥

यदीया वाग्गगा, विविधनय कल्लोलविमला ।
वृहज्ज्ञानाम्भोभिर्जगति जनता यास्नपयति ॥
इदानीमप्येषा, बुधजनमरालै परिचिता ।
महावीर स्वामी, नयन पथगामी भवतु मे ॥६॥

अनिर्वारोद्रेकस्, त्रिभुवनजयी काम सुभट ।
कुमारावस्थायामपि निजबलाद्येन विजितः ॥
स्फुरन्नित्यानद प्रशमपदराज्याय स जिन. ।
महावीर स्वामी, नयन पथगामी भवतु मे ॥ ७ ॥

महामोहातङ्क प्रशमनपराकस्मिक् भिषड् ।
निरापेक्षो बन्धुर्विदित महिमा मगलकर. ॥

शरण्य साधूना, भवभयभृतामुत्तमगुणो ।
महावीर स्वामी, नयनपथगामी भवतु मे ॥८॥
महावीराष्टक स्तोत्र, भक्त्या भागेन्दुना कृतम् ।
य पठेच्छृणुयाच्चापि स याति परमा गतिम् ॥

महावीर वाणी

अखिल जग तारन को जल यान ।
प्रकटी वीर तुम्हारी वाणी जग मे सुधा समान ॥ टेक ॥
अनेकान्तमय स्यात्पद लाछित, नीति न्याय की खान ।
सब कुवाद का मूल नाशकर, फैलाती सद्-ज्ञान ॥१॥
नित्य अनित्य अनेक एक इत्यादिक वाद महान ।
नत मस्तक हो जाते सम्मुख, छोड सकल अभिमान ॥२॥
जीव अजीव तत्व निर्णय कर, करती सशय हान ।
साम्य भाव रस चखते हैं जो करते इसका पान ॥ ३ ॥
ऊँच नीच औ लघु सु दीर्घ का, भेद न कर भगवान ।
सब के हित की चिन्ता करती, सब पर दृष्टि समान ॥ ४ ॥
अन्धी श्रद्धा का विरोध कर, हरती सब अज्ञान ।
युक्तिवाद का पाठ पढाकर, कर देती सज्ञान ॥ ५ ॥
ईश न जग कर्ता फल दाता, स्वय सृष्टि निर्माण ।
निज उत्थान पतन निजकर मे, करती यो सुविधान ॥६॥
हृदय वनाती उच्च सिखाकर धर्म सु दया प्रधान ।
जो नित समझ आदरे इसको, वे "युगवीर" महान ॥७॥

श्री सम्मेदशिखरजी के प्रति

कुमरेश)

हे पावनतम तीर्थ मनोरम, सुषमा गौरव के शुभ धाम ।
सिद्ध क्षेत्र सम्मेदशिखर नित, तुमको वारम्वार प्रणाम ॥१॥

आत्म साधना के पुण्य स्थल, सिद्धि प्राप्ति के हे आधार ।
तपः पूत कल्मष भय भंजन, नमस्कार है सौ सौ बार ॥२॥

वन्दनीय तुम महिमा मंडित, शुचिता सयत शैल महान ।
जगत पूज्य गिरिराज न कोई, आज तुम्हारे और समान ॥३॥

विविध मनोहर कूट कि जिन पर तीर्थंकर कर आत्मध्यान ।
भवसागर तर पार हो गये, पाया है शाश्वत निर्वाण ॥४॥

कोटि कोटि साधक अविचल हो, हुए साधना मे लवलीन ।
मिला उन्हे अमरत्व हुए वे, जन्म मरण भव बन्धन हीन ॥५॥

कण कण इतना पूज्य तुम्हारा, दर्शन से क्षय होते पाप ।
व्याकुल मानव के मन के सब, मिट जाते हैं भव सताप ॥६॥

एक बार भी जहा वन्दना, की इस जन ने हो तल्लीन ।
पशुता पामरता मिट जाती, पा जाता है पथ नवीन ॥७॥